वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६० अंक ३
मार्च २०२२

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६०

अंक ३

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

व्यवस्थापक

स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक

स्वामी पद्माक्षानन्द

फाल्गुन, सम्वत् २०७८

मार्च २०२२

अनुक्रमणिका

* श्रीरामकृष्ण की दिव्य-वाणी १०२
* भगवान शिव का व्यक्तित्व (डॉ. जया सिंह) १०५
* शिवलिङ्गसूक्तम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ११३
* होली के विविध रंग (राजेश कश्यप) ११४
* (बच्चों का आंगन) पुत्र को शूरवीर बनाने वाली माँ : जयवन्ता बाई (स्वामी गुणदानन्द) ११६
* (युवा प्रांगण) न्यायार्थ परिवार, पार्टी का विरोध भी स्वीकार करें (सीताराम गुप्ता) १२१
* श्रीरामकृष्ण का मानवतावाद (स्वामी आत्मस्थानन्द) १२४
* क्रान्तिकारी-चिन्तन की देवियाँ (अरुण चूड़ीवाल) १२९
* भगवान ने यह संसार ईश्वरप्राप्ति हेतु दिया है (स्वामी सत्यरूपानन्द) १३३
* जब हृदय में मन्दिर बनने लगा (श्रीधर कृष्ण) १३६
* (कविता) जय महेश गौरीपति शंकर, (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ११७
* अध्यात्म और मेरा चिकित्सकीय जीवन (डॉ. राजीव रंजन) १३४
* (कविता) रामकृष्ण प्रभु हृदय विराजो (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) १३६

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १०१
पुरखों की थाती १०१
सम्पादकीय १०३
वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ १०७
श्रीरामकृष्ण-गीता ११७
रामराज्य का स्वरूप ११८
प्रश्नोपनिषद् १२३
आध्यात्मिक जिज्ञासा १२६
सारगाछी की स्मृतियाँ १३१
गीतातत्त्व-चिन्तन १३७
साधुओं के पावन प्रसंग १४०
समाचार और सूचनाएँ १४३

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति १७/–	१६०/-	८००/-	१६००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	५० यू.एस. डॉलर	२५० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिये	२००/–	१०००/–	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : रायपुर (छत्तीसगढ़)
अकाउण्ट नम्बर : 1 3 8 5 1 1 6 1 2 4
IFSC : CBIN0280804

* कृपया सदस्यता राशि जमा करने के बाद इसकी सूचना हमें तुरन्त **फोन, मोबाईल, एस.एम.एस., व्हाट्सएप, ई-मेल** अथवा **स्कैन द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड नं.** के साथ भेजें।
* विवेक-ज्योति पत्रिका के सदस्या किसी भी माह से बन सकते हैं।
* पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूर्ण होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।
* विवेक-ज्योति कार्यालय से प्रतिमाह सभी सदस्यों को एक साथ पत्रिका प्रेषित की जाती है। डाक की अनियमियता के कारण कई बार पत्रिका सदस्यों को नहीं मिलती है, अत: पत्रिका प्राप्त न होने पर अपने समीप के डाक विभाग से सम्पर्क एवं शिकायत करें। इससे कई सदस्यों को पत्रिका मिलने लगी है। पत्रिका न मिलने की शिकायत माह के अंत में ही करें। अंक उपलब्ध होने पर ही पुन: प्रेषित किया जायेगा।
* सदस्यता, एजेन्सी, विज्ञापन एवं अन्य विषयों की जानकारी के लिए 'व्यस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

मार्च माह के जयन्ती और त्यौहार

१	महाशिवरात्रि
४	श्रीरामकृष्ण देव
१८	श्रीचैतन्य महाप्रभु, होली
२१	स्वामी योगानन्द
१४, २८	एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर श्रीरामकृष्ण का चित्र है और चित्र के पीछे कोलकाता का दक्षिणेश्वर मन्दिर है।

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री प्रणब कुमार अम्बोली, खारघर, नवी मुम्बई	२,०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६७६.	श्री लीलाधर केशव कडु, नागपुर (महा.)	विद्या बिहार महाविद्यालय, शुभम विहार, बिलासपुर (छ.ग.)
६७७.	डॉ. सुमन सौरभ, सूर्या कॉलोनी, जोधपुर (राज.)	लाईब्रेरी, सर्वोदय सिनियर कॉलेज, सिंदेवाही, चंद्रपुर (महा.)
६७८.	,, ,,	लाईब्रेरी, इंदिरा गाँधी विद्यालय, टेकारी, जि. चंद्रपुर (महा.)

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

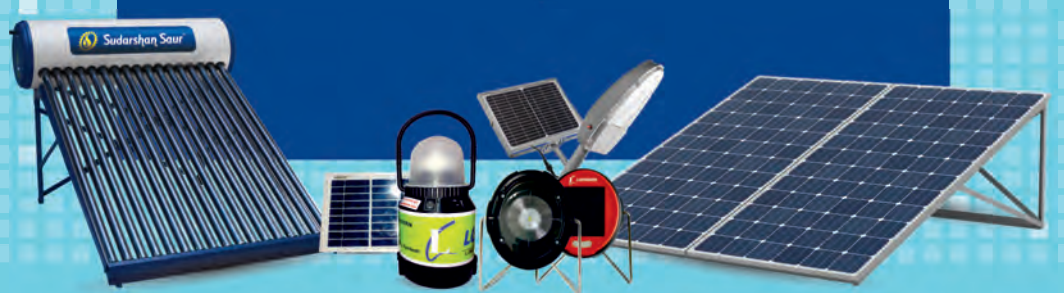

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखों संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६० **मार्च २०२२** **अंक ३**

श्रीरामकृष्ण-स्तुतिः

वन्दे पुराणपुरुषं करुणावतारं
प्रेमानुराग-भरिताक्षि-सरोज-युग्मम्।
भक्तालिली-युगभाव-कदम्ब-सारं
श्रीरामकृष्णमखिलाघ-कुरंग-भंगम्।।

– जीवों के प्रति करुणावश जो धराधाम में अवतीर्ण हुए, जिनके युगल नेत्र-कमल, ईश्वर के प्रति प्रेम और अनुराग से परिपूर्ण थे, भक्तरूपी भ्रमरगण जिनके द्वारा आचरित और उपदिष्ट, वर्तमान समय के लिये उपयोगी, 'शिवज्ञान से जीवसेवा', 'नारी मात्र ही श्रीजगदम्बा की प्रतिमूर्ति', 'ईश्वर-प्राप्ति ही मानव जीवन का उद्देश्य है' इत्यादि भावरूपी कदम्ब के फूल का रस (या मधु का लेप) पान करते हैं, जो पापरूपी कुत्सित रंग-समूहों का विलय करनेवाले हैं, अथवा उसी प्रकार के हरिण समूहों का नाश करनेवाले हैं, उन्हीं पुराण पुरुष श्रीरामकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।

पुरखों की थाती

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।।७५३।।

– व्यक्ति के लिये किसी भी वस्तु की या व्यक्ति से आशा करना ही उसके परम दुःख का कारण है और नैराश्य अर्थात् आशा का त्याग ही परम सुख का हेतु है।

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत्पण्डितो नरः।
देशकालं बलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्।।७५४।।
(चाणक्य)

– विद्वान् व्यक्ति को चाहिये कि वह बगुले के समान अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करके, अपने स्थान, काल तथा बल को समझते हुए – अपने सारे कार्य सम्पन्न करे।

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम्।
दैवायत्तं यतः सर्वं तस्मात् सन्तोषमाश्रयेत।।७५५।।

– भला किस व्यक्ति के मन में उठी हुई सुख की सारी कामनाएँ पूरी हो पाती हैं ! (किसी की भी नहीं), क्योंकि सब कुछ प्रारब्ध के अधीन है, अतः सदा सन्तोष का आश्रय लेना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण की दिव्य-वाणी

Ramakrishna in Samadhi. This photo was taken on 10 December 1881, at the studio of Bengal Photographers, Calcutta.

भक्त – महाराज, संसार के प्रति कर्तव्य कब तक रहता है?

श्रीरामकृष्ण – जब तक संसार में सबका पालन-पोषण का प्रबन्ध न हो जाए। अगर तुम्हारे बच्चे अपने पैरों पर खड़े हो जाएँ, तो फिर उनके प्रति तुम्हारा कर्तव्य नहीं रह जाता।

श्रीरामकृष्ण (गृहस्थ भक्तों के प्रति) – "तुम्हें रुपए की ओर इस दृष्टि से देखना चाहिए कि उससे दाल-रोटी मिलती है, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिए भवन मिलता है, ठाकुरजी की पूजा और साधु-भक्तों की सेवा होती है। परन्तु धन-संचय करना व्यर्थ है। मधुमक्खियाँ कितने परिश्रम से छत्ता तैयार करती हैं, पर कोई दूसरा ही आदमी आकर उसे तोड़ ले जाता है। स्त्री का पूर्ण रूप से त्याग करना तुम लोगों के लिए नहीं है। परन्तु लड़के-बच्चे हो जाने पर पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहना चाहिए।

प्रश्न – हमें तो हमेशा दाल-रोटी की चिन्ता करनी पड़ती है, हम साधना कैसे करें?

उत्तर – तुम जिसके लिए श्रम करोगे, जिसका काम करोगे, वही तुम्हें भोजन देगा। जिसने तुम्हें संसार में भेजा है, उसने पहले से ही तुम्हारे भोजन का प्रबन्ध कर रखा है।

* घर, संसार, लड़के-बच्चे, परिवार सब दो दिन के लिए हैं। ताड़ का पेड़ ही सत्य है, फल अनित्य हैं, लगते और झड़ जाते हैं।

* कामिनी-कांचन का पूर्ण त्याग संन्यासी के लिए है। संन्यासी को स्त्रियों का चित्र तक नहीं देखना चाहिए। अचार या इमली की याद आते ही मुँह में पानी आ जाता है, देखने या छूने की तो बात ही क्या ! पर तुम जैसे गृहस्थों के लिए इतना कठिन नियम नहीं है, यह केवल संन्यासियों के लिए है। तुम ईश्वर की ओर मन रखकर, अनासक्त भाव से स्त्री के साथ रह सकते हो। पर मन को ईश्वर में लगाने और अनासक्त बनाने के लिए बीच-बीच में निर्जनवास करना चाहिए। ऐसे निर्जन स्थान में जाकर तीन दिन, या सम्भव न हो, तो एक ही दिन अकेले रहते हुए व्याकुल होकर ईश्वर को पुकारना चाहिए।

* एक या दो सन्तान हो जाने के बाद पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहते हुए सतत भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे प्रभो, हमें शक्ति दो, ताकि हम संयम और पवित्रतापूर्ण जीवन बिता सकें।'

* संसार में रहो पर संसारी मत बनो। जैसा कि कहावत है, 'साँप के मुँह में मेंढक को नचाओ, पर साँप उसे निगल न पाए।'

* नाव पानी में रहे, तो कोई हानि नहीं, पर नाव के अन्दर पानी न रहे, वरना नाव डूब जाएगी। साधक संसार में रहे, तो कोई हानि नहीं, परन्तु साधक के भीतर संसार न रहे।

* तुम संसार में रहकर गृहस्थी चला रहे हो, इसमें हानि नहीं, परन्तु तुम्हें अपना मन ईश्वर की ओर रखना चाहिए। एक हाथ से कर्म करो और दूसरे हाथ से ईश्वर के चरणों को पकड़े रहो। जब संसार के कर्मों का अन्त हो जाएगा, तब दोनों हाथों से ईश्वर के चरणों को पकड़ना। ○○○

सम्पादकीय

ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग व्याकुलता और भगवान श्रीरामकृष्ण

Ramakrishna in Samadhi during a kirtan at Keshab Sen's house in Calcutta, 21 September 1879. His nephew, Hriday, holds him. Brahmo devotees sit on the carpet.

मानव-जीवन का प्रमुख उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति है। इसे शास्त्रों और ऋषि-मुनि अनादि काल से घोषणा करते हुए चले आ रहे हैं। उस ईश्वर की प्राप्ति हेतु जिज्ञासुओं, साधकों की क्षमता और रुचि के अनुसार विभिन्न पथों का भिन्न-भिन्न मार्गों, मतों का निर्देश भी युगाचार्यों के द्वारा यथासमय दिया जाता रहा है तथा उसका अवलम्बन कर जिज्ञासुओं ने अपने परम इष्ट को प्राप्त कर अपना जीवन धन्य किया है। वे प्रमुख प्रचलित मार्ग हैं – राजयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग। भक्तियोग का वर्णन जन-मानस में प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भागवत पुराण में विस्तृत और सोदाहरण रूप से मिलता है। भगवान श्रीराम ने माता शबरी को नवधाभक्ति का उपदेश देते हुए कहा था – **प्रथम भगति संतन कर संगा।** तब जिज्ञासु के मन में प्रश्न उठा कि सत्संग कैसे मिले? उस प्रश्न का उत्तर भगवान श्रीरामकृष्ण देव ६ दिसम्बर, १८८४ की बंकिम के साथ चर्चा करते समय देते हैं – ''उनसे व्याकुल होकर प्रार्थना करो, आन्तरिक होने पर वे अवश्य सुनेंगे। सम्भव है कि ऐसा कोई सत्संग जुटा दें, जिससे सुविधा हो जाय। सम्भव है, कोई कह दे, ऐसा-ऐसा करो, तो ईश्वर को पाओगे।'' ... ''व्याकुलता हो, तो साधुसंग मिल जाता है, साधु-संग से अपनी घड़ी बहुत कुछ मिला ली जा सकती है।''[१]

व्याकुलता से कृपा और साधनोपकरण प्राप्ति

२६ अक्तूबर,१८८४ को महिमाचरण के साथ चर्चा हो रही है। महिमाचरण ने श्रीरामकृष्ण देव से जिज्ञासा की – ''किस कर्म से हम उन्हें (परमात्मा को) प्राप्त कर सकते हैं?'' श्रीरामकृष्ण ने कहा – ''उन्हें अमुक कर्म से पाता है और अमुक कर्म से नहीं, यह बात नहीं है। उनका मिलना उनकी कृपा पर अवलम्बित है। हाँ, व्याकुल होकर कुछ कर्म करते रहना चाहिए। विकलता के रहने पर उनकी कृपा होती है।''[२]

इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने वह उदाहरण दिया, जिसमें साँप के विष से औषधि बनाकर रोगी को स्वस्थ करने के लिये बहुत से उपकरणों और सुयोग – जैसे स्वाती नक्षत्र में बरसात का पानी, मुर्दे की खोपड़ी, साँप का मेंढक पर आक्रमण और साँप के विष का खोपड़ी में गिरना आदि के सुयोग की आवश्यकता थी, जो असम्भव प्रतीत हो रहा था, लेकिन उस व्यक्ति की व्याकुलता के कारण सब कुछ ठीक समय पर जुटता गया और अन्त में वह सफल हो गया। ठाकुर कहते हैं, ''व्याकुलता के होने पर सब हो जाता है।''[३]

व्याकुलता कैसी हो?

व्याकुलता कैसी हो, हम किस प्रकार व्याकुल होकर ईश्वर को पुकारें? सांसारिक विषय-वस्तुओं के लिये लोगों का व्यग्र होना जग-प्रसिद्ध है। श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं एक भक्त को कहा था, ''लोग स्त्री या लड़के के लिए आँसुओं की धारा बहाते हैं, रुपये के लिए रोते हुए आँखें लाल कर देते हैं, पर ईश्वर के लिए कोई कब रोता हैं?'' वांछित वस्तु न मिलने पर व्यक्ति व्यग्र हो जाता है, दिन-रात वाट्सअप, यूट्यूब पर व्यस्त रहनेवाले लोग जब ट्रेन में टावर नहीं मिलता है, तो कितना व्याकुल हो जाते हैं ! फोन पटकने लगते हैं। खैर, ठाकुर ने व्याकुलता का एक अच्छा दृष्टान्त दिया। वे कहते हैं – ''बालक जिस प्रकार माँ को न देखने से बेचैन हो जाता है, लड्डू, मिठाई हाथ पर लेकर चाहे भुलाने की चेष्टा करो, परन्तु वह कुछ नहीं चाहता, किसी से नहीं भूलता और कहता है, 'नहीं, मैं माँ के पास ही जाऊँगा। इस प्रकार ईश्वर के लिये व्याकुलता चाहिए। अहा ! कैसी स्थिति ! बालक जिस प्रकार 'माँ माँ' कहकर पागल हो जाता है, किसी भी तरह नहीं भूलता ! जिसे संसार के

ये सब सुख-भोग फीके लगते हैं, जिसे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वही हृदय से 'माँ माँ' कहकर कातर होता है। उसी के लिये माँ को सब कुछ छोड़ दौड़कर आना पड़ता है। यही व्याकुलता है।''[४]

व्याकुलता का दूसरा दृष्टान्त है माँ कौसल्या का। जब वनवास की अवधि प्राय: समाप्त होने को है। वे श्रीराम-लक्ष्मण-सीता से मिलने को अतीव व्याकुल हैं, तब वे कहती हैं – अरी सखि ! वनवास की अवधि आज पूरी होगी या अन्य दिन। उसके बाद अपने महल पर चढ़कर दक्षिण दिशा में देखकर कहती हैं – देखो, पूछो, तो वे पथिक कहाँ से आ रहे हैं? रामागमन की व्याकुलता से प्रतीक्षा कर रही हैं –

अवधि आजु किधौं औरो दिन ह्वैहै।
चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि,
बूझ धौं पथिक कहाँ ते आये वै हैं।। गीतावली ६/१७/१

एक दिन माता कौसल्या वनवास-अवधि को निकट जानकर अत्यन्त व्याकुल हो जाती हैं – **अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।** वे ज्योतिषी से पूछती हैं। कभी काग से कहती हैं – अरे काग ! सच बोलो, मेरे बच्चे कुशलता से कब आएँगे? जब मैं उन्हें नयन भरकर सीतासहित राम-लक्ष्मण को देखकर हृदय से लगा लूँगी, तो तुम्हें दूध-भात दूँगी और तेरी चोंच सोने से मढ़ा दूँगी – **कब ऐहें मेरे बाल कुसल घर, कहहु काग फुरी बाता।। ६/१९/१/**

इस प्रकार माता का भी पुत्र के प्रति ऐसी व्याकुलता का यह दृष्टान्त है, जिससे ईश्वरीय व्याकुलता की उद्दीपना की जा सकती है। भगवान श्रीराम के लिये नन्दीग्राम में श्रीभरत जी की व्याकुलता भी ध्यातव्य है, जब वे वनवास की एक दिन की अवधि रहने पर कैसे व्यग्रता से भगवान के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं, जैसे कृपण व्यक्ति सोने-चाँदी के लिये, पानी में डूबता हुआ आदमी साँस लेने के लिये और सिर में घाव होने पर कुत्ता जैसे व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ता रहता है, वैसी व्याकुलता होने पर ईश्वर मिलते हैं।

श्रीरामकृष्ण देव भी माँ काली से व्याकुलता से क्रन्दन करते हुए कहते थे – ''माँ, तूने रामप्रसाद को दर्शन दिया है, तो मुझे क्यों न दर्शन देगी? मैं धन, जन, भोग-सुख कुछ भी नहीं चाहता हूँ, मुझे दर्शन दे !''[५]

व्याकुलता क्यों नही आती?

चित्त में विषय-वासना रूपी माया के रहने से मन स्व वांछित विषय के लिये जितना तीव्र व्याकुल होता है, उतना कभी भगवान के लिये व्याकुल नहीं होता। क्योंकि जहाँ विषय के लिये व्यग्रता होती है, भगवद्-व्याकुलता वहाँ नहीं होती। श्रीरामकृष्ण देव अतुल से कहते हैं – ''क्यों वैसी दृढ़ता, व्याकुलता नहीं होती? ...अभ्यासयोग ! प्रतिदिन उन्हें पुकारने का अभ्यास करना चाहिए। एक दिन में नहीं होता। रोज पुकारते-पुकारते व्याकुलता आ जाती है। रात-दिन केवल विषय-कर्म करने पर व्याकुलता कैसे आयेगी?''[६]

श्रीरामकृष्ण देव बड़ा अच्छा उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं – ''मन से इन दोनों के जाते ही योग होता है। आत्मा-परमात्मा चुम्बक पत्थर है। जीवात्मा एक सूई है, उनके खींच लेने से ही योग हो गया। परन्तु सूई में अगर मिट्टी लगी हुई हो, तो चुम्बक नहीं खींचता। मिट्टी साफ कर देने से फिर खींचता है। कामिनी-कांचन मिट्टी है, इसे साफ करना चाहिए। ... उनके (भगवान) लिये व्याकुल होकर रोओ, वही जल मिट्टी पर गिरने से मिट्टी धुल जायेगी। जब बहुत साफ हो जायेगा, तब चुम्बक खींच लेगा। योग तभी होगा।''[७]

व्याकुलता : भक्ति का उपाय

मानव-जीवन में अत्यन्त दुर्लभ हरिभक्ति भी व्याकुलता से प्राप्त की जा सकती है। जब बंकिम ने भगवान श्रीरामकृष्ण देव से भक्ति का उपाय पूछा, तो उन्होंने कहा – ''व्याकुलता। जिस प्रकार लड़का माँ को न देखकर उसके लिये बेचैन होकर रोता है, उसी प्रकार व्याकुल होकर रोने से ईश्वर को पाया जा सकता है।

''अरुणोदय होने पर पूर्व दिशा लाल हो जाती है, उस समय समझा जाता है कि सूर्योदय में अब अधिक विलम्ब नहीं है। उसी प्रकार यदि किसी का प्राण ईश्वर के लिये व्याकुल देखा जाय, तो भलीभाँति समझा जा सकता है कि इस व्यक्ति का ईश्वर-प्राप्ति में अधिक विलम्ब नहीं है।''[८]

इस प्रकार जीवन में ईश्वरप्राप्ति हेतु व्याकुलता परम आवश्यक है, जिसका निदर्शन श्रीरामकृष्ण देव ने अपने जीवन के द्वारा प्रदर्शित किया।

सन्दर्भ-ग्रन्थ : १. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, अखण्ड, पृ. ७९१-९२, २. वही, पृ. ७५४, ३. वही, पृ. ७५५, ४. वही, पृ. ७९२, ५. श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग, १/१५६, ६. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत, पृ. ८३१, ७. वही, पृ. ३७८, ८. वही, पृ. ७९३.

महाशिवरात्रि विशेष

भगवान शिव का व्यक्तित्व

डॉ. जया सिंह

प्रो. आइसीएफआई विश्वविद्यालय, रायपुर

जब हम शिव कहते हैं, तो इसका अभिप्राय दो मूल वस्तुओं की ओर होता है। शिव का अर्थ है पूर्ण, परम ज्ञान से संवम्भु, जगत् कल्याणकारी तथा शुभ शान्ति अर्थात् अत्यन्त कल्याणकारी एवं मंगल। शिव सर्वत्र व्याप्त होकर भी शून्य हैं। शून्य से ही जीवन विकसित हुआ है। आधुनिक विज्ञान ने भी प्रमाणित किया कि इस सृष्टि अथवा जगत में सब कुछ शून्य से आता है और वापस शून्य में चला जाता है। इस अस्तित्व का आधार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का मौलिक गुण एक विराट शून्यता है। शिव वह गर्भ है, जिसमें से सब कुछ जन्मता है और सब कुछ पुन: उसी में समा जाता है। वस्तुत: शिव शब्द 'वह जो नहीं है' और आदियोगी दोनों की ही ओर संकेत करता है।

देवों के देव महादेव ! कहा जाता है कि महादेव का प्राकट्य सृष्टि की रचना से पूर्व ही हुआ। महादेव अजन्मे हैं, सृष्टि के आदि से अन्त तक केवल महादेव ही विद्यमान होंगे। पृथ्वी की सम्पूर्ण शक्ति 'ॐ नम: शिवाय' इन पंचाक्षरों में निहित है। त्रिदेव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश। ब्रह्मा सृष्टि को रचने वाले हैं, विष्णु, श्रीहरि पालनकर्ता हैं एवं भगवान शिव संहारक हैं। शिव, महेश्वर, शम्भु, पिनाकी, शशिशेखर, वामदेव, विरूपाक्ष, कपर्दी, नीललोहित, शंकर, शूलपाणि, खट्वांगी, विष्णुवल्लभ, शिपिविष्ट, अम्बिकानाथ, श्रीकण्ठ, भक्तवत्सल, भव, शर्व, त्रिलोकेश, शितिकण्ठ, शिवप्रिय, उग्र, कपाली, कामारि, सुरसूदन, गंगाधर, ललाटाक्ष, महाकाल, कृपानिधि, भीम, परशुहस्त, मृगपाणि, जटाधर, कैलाशवासी, कवची, कठोर, त्रिपुरान्तक, वृषांक, अधीश्वर, सर्वज्ञ, सदाशिव, विश्वेश्वर, भर्गव, गिरिधन्वा, गिरिप्रिय जैसे विभिन्न नामों से पुकारे जानेवाले शिव, जब वह शिव कहलाते हैं, तो उनके संग शक्ति होती है। बिना शक्ति के वे शव के समान हो जाते हैं। अर्धनारीश्वर रूप इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

वह सब जो परस्पर विपरीत है, किन्तु वह एक कैसे है? शिव को १००८ नामों से जाना जाता है, यह अलग-अलग नाम उनके एकत्व का प्रतिनिधित्व करता है। विदित है, माता सती ने प्रत्येक जन्म में शिव को वरण करने का

संकल्प लिया था। किन्तु राजा दक्ष द्वारा पति अर्थात् शिव के अनादर किए जाने पर स्वयं को भस्म कर लिया। शिव यह सह नहीं सके और संसार से उन्होंने विरक्ति ले ली। पुन: सती का जन्म हुआ। हिमालय और मैना देवी के यहाँ। बचपन से ही यहाँ भी पार्वती शिव के प्रति समर्पित थीं, कठोर से कठोर तप और व्रत कर उन्होंने शिव को पुन: प्राप्त कर लिया।

शिव की प्रत्येक छवि उनकी भूमिकाओं को दर्शाती है। महायोगी के रूप में शिव ध्यान और शान्त अवस्था में प्रस्तुत होते हैं, व्याघ्र चर्म पर विराजित शिव की आँखें आधी खुली हैं। प्रकृति के सम्पर्क में पशु, अर्धखुली आँखें जगत में आंशिक रूप से होने का संकेत है। शिव के ये तीन नेत्र सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों एवं भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों और स्वर्ग, मृत्यु और पाताल तीनों लोकों के प्रतीक हैं। शिव **त्र्यम्बक** हैं, उनकी तीसरी आँख है। इसका अभिप्राय है बोध का एक दूसरा आयाम खुलना, जो अपने भीतर की ओर भी देख सके। यह बोध हमें जीवन को बिल्कुल अलग ढंग से देखने की दृष्टि देता है। इसे समझने के पश्चात् हम संसार की बहुत-सी चीजों का अनुभव कर सकते हैं। अर्थात् ऊर्जा और स्तर को विकसित करना कि बोध बढ़े और तीसरी आँख खुल जाए और यह आँख हमारी दृष्टि की होगी। क्योंकि दोनों आँखें मात्र इन्द्रियाँ हैं और तीसरी आँख ज्ञान की दृष्टि है।

त्रिशूलधारी होने का संकेत है कि बुद्धि, मन एवं शरीर पर प्रभुत्व का प्रतिनिधित्व होना। भगवान शिव का त्रिशूल जीवन के तीन मूल आयामों को दर्शाता है, जिन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहा जा सकता है। तीन मूलभूत नाड़िया हैं, बाईं, दाहिनी और मध्य। नाड़ी शरीर का वह माध्यम है, जिनसे प्राण का संचार होता है। इड़ा और पिंगला जीवन के मूल द्वैत के प्रतीक हैं। इसे हम शिव और शक्ति का नाम देते हैं। यह तर्क, बुद्धि और सहज ज्ञान की ओर संकेत करते हैं। सृष्टि में मानव आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक इन तथ्यों से त्रस्त होता है, यह त्रिशूल इन दोषों का नाश करता है।

वृषभ का अर्थ है धर्म ! मनुस्मृति के अनुसार 'वृषो हि भगवान् धर्म:'। वेदों में धर्म को चार पैरोंवाला प्राणी कहा गया है। अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। महादेव इन चार पैरोंवाले वृषभ की सवारी करते हैं अर्थात् ये चारों शिव के अधीन हैं। अथर्ववेद में वृषभ अर्थात् पृथ्वी का धारक, पोषक उत्पादक माना गया है। वृष का अर्थ मेघ भी है।

नन्दी जो शिव का वाहन है, शक्ति और ज्ञान का प्रतिनिधित्व करता है। नन्दी अर्थात् अनन्त प्रतीक्षा का प्रतीक। नन्दी का यह गुण ग्रहणशीलता की ओर संकेत करता है। शिव के सर्वाधिक निकट नन्दी, जिसमें ग्रहणशीलता की विपुलता है, हमारे जीवन में भी किसी मंदिर में प्रवेश करने से पूर्व नन्दी का यह गुण होना चाहिए। हम सामने सजग होकर बैठकर धैर्यपूर्वक भगवान के दर्शन की प्रतीक्षा कर सकें, बैठकर ईश्वर से बातें कर सकें, भगवान की बातें सुन सकें, उन्हें देख सकें।

जहाँ-जहाँ शिव का प्राक्ट्य हुआ, वहाँ-वहाँ उनका स्वरूप स्थापित हो गया है, जिन्हें आप और हम बारह ज्योतिर्लिंगों के रूप में देखते हैं। शिव अन्तरिक्ष के देव हैं। वस्तुत: उनका नाम व्योमकेश भी है। उनकी **जटाएँ** आकाश की भाँति हैं, जटाएँ वायुमंडल की ओर संकेत करती हैं। वायु आकाश में व्याप्त होती है। सूर्य मंडल के ऊपर परमेष्ठि मंडल है, इसके अर्थतत्त्व को गंगा की संज्ञा से निरूपित किया गया है। इसलिए गंगा शिव की जटाओं से प्रवाहित हुई हैं। शिव रुद्रस्वरूप उग्र हैं, इस उग्रता का निवास मस्तिष्क में हैं। वस्तुत: शान्ति का संकेत देता **अर्धचन्द्र** उनके मस्तक पर विराजित होकर उग्रवृत्ति को शान्त और शीतल बनाते हैं। विषपान के कारण जो नीलकण्ठ कहलाए, उनकी ज्वलन भी गंगा की शीतल जलधारा और चन्द्रमा की शीतलता से शान्त होती है। चन्द्र मन का प्रतीक है, इसलिए शिव मन से भोले, निर्मल, पवित्र और सशक्त हैं। इनके मस्तक पर चन्द्र स्वच्छ और उज्ज्वल है, वह तनिक भी मलिन नहीं है और सदैव अमृत की वर्षा करता है। इसलिये चन्द्रमा को सोम भी कहा जाता है। यह शान्ति का प्रतीक है। शान्ति, विनाश, समय, योग, ध्यान, मृत्यु, प्रलय और वैराग्य के देवता, जगत्पिता महादेव। शिव-पार्वती-विवाह में भगवान विष्णुजी ने इस स्तुति से भगवान शिव के दिव्य रूप का वर्णन किया –

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि।।

शेष भाग पृष्ठ १२८ पर

वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (८)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। वे लुसाका और चण्डीगढ़ के अध्यक्ष और वेदान्त केसरी के सम्पादक थे। वे कई वरिष्ठ संन्यासियों के सान्निध्य में आये और उनकी मधुर स्मृतियों को लिपिबद्ध किया है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री रामकुमार गौड़, वाराणसी ने किया है। – सं.)

स्वामी कैलासानन्द जी

मैं सम्भवत: संघ में योगदान देने के पूर्व पहली बार चेन्नई में उनसे मिला था, तब वे वहाँ के महन्त थे। उनसे बातचीत संघ में शामिल होने पर ही केन्द्रित रही। अपने उत्तर में उन्होंने एक घटना बताई कि वहाँ एक युवक संघ

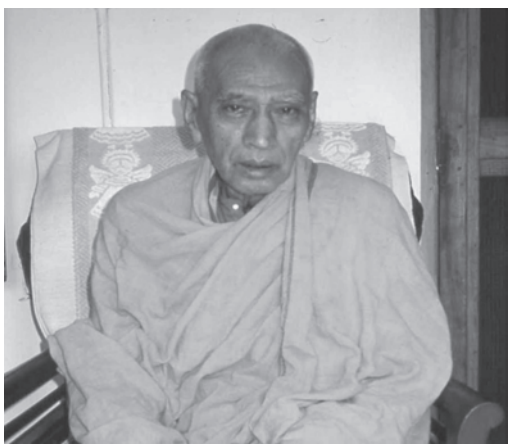

स्वामी कैलासानन्द जी महाराज

में सम्मिलित हुआ और उसे प्रथम तल पर एक कमरे में रहने को कहा गया। कुछ दिनों बाद, कुछ कारणों से उसे भूमितल पर स्थित एक कमरे में रहने को कहा गया। स्वामी कैलासानन्द जी भी वहाँ रहा करते थे। वह युवक यह कहते हुए मठ छोड़कर चला गया कि भूमितल पर रहने को कहकर उसका अपमान किया गया था।

एक बार मैं स्वामी कैलासानन्द जी से बेलूड़ मठ में मिला। मैंने उनसे कहा कि श्रीरामकृष्ण और स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने नीरव रात के समय ध्यान करने की संस्तुति की है, किन्तु हमें यह बड़ा कठिन लगता है। इस पर स्वामी कैलासानन्द जी ने कहा, वे महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी) के घनिष्ठ सम्पर्क में रहे थे (सम्भवत: वे उनके सेवकों में से एक थे) और महापुरुष महाराज ने इसकी संस्तुति नहीं की थी। हाँ, हमें भोर में या रात्रि के अन्तिम प्रहर अर्थात् ब्रह्ममुहूर्त में ३ से ६ बजे तक ध्यान करना चाहिए।

बातचीत के दौरान स्वामी कैलासानन्द जी ने कहा कि श्रीरामकृष्ण के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। यदि वे चाहें, तो कोई नीरव रात्रि के क्षणों अर्थात् मध्यरात्रि में ध्यान करने में समर्थ होगा। उन्होंने यह भी कहा कि हमलोग अपनी इच्छा से संघ में नहीं आए हैं। श्रीरामकृष्ण ही हमें यहाँ ले आए हैं।

स्वामी योगीशानन्द (उमेश महाराज)

स्वामी योगीशानन्द एक वरिष्ठ साधु थे, जो बहिरंग विभाग, श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम, वाराणसी के रोगियों की मरहम-पट्टी तथा चोट और दुर्घटना के मामलों को देखा करते थे। वे चोट और घावों पर टाँका लगा सकते थे। वे पुष्पों, गुलाबों आदि को उगाने के विशेषज्ञ थे और पुष्प-प्रदर्शनी में अनेक पुरस्कार–विजेता भी रहे।

एक बार उन्होंने कहा, ''अशोक ! इस रामकृष्ण मिशन को आरम्भ करके स्वामीजी (विवेकानन्द) ने हमें बचा लिया है, अन्यथा हम लोग भी पेड़ के नीचे बैठकर गाँजा पी रहे होते !''

जोशी महाराज

जोशी महाराज सारदापीठ में क्लॉक टॉवर बनानेवाले इंजीनियर स्वामी थे। वे इतने विनम्र थे कि उत्सव–दिवसों में वे स्वयं अपने कनिष्ठों तक के पास जाकर उन्हें अभिवादन करते। जब तक वे समर्थ रहे, तब तक नित्य गंगा-स्नान को जाते थे। एक बार स्नान के समय उन्हें किसी तेज नुकीली चीज से चोट लगी, किन्तु किसी से उन्होंने कुछ नहीं बताया। अन्तत: वह चोट बढ़कर एक कष्टदायक फोड़ा हो गया। उन्होंने अपने लिए काली-कीर्तन को देवनागरी में लिख रखा था।

स्वामी मुक्तानन्द (वनविहारी महाराज)

इन सुप्रसिद्ध स्वामी ने लगभग ६० वर्षों तक पूजा के भाव से रोगियों की मरहम–पट्टी की थी। इनके बारे में विस्तृत वर्णन मेरी पुस्तक 'स्वास्थ्य, दवा और धर्म' में लिपिबद्ध है।

उन्होंने मुझे बताया था कि उनके पिताजी ने उनसे कहा था कि एक बार साधु बन जाने के बाद कभी घर मत जाना। उन्होंने संसारी लोगों की संगति से उन्हें दूर रहने को भी कहा था और कहा कि ''तुम उन्हें आध्यात्मिक बनाने में समर्थ नहीं होगे, किन्तु वे निश्चित ही तुम्हें संसारी बना देंगे।''

रामप्रसाद महाराज

वरिष्ठतम और सेवानिवृत्त साधुओं में से एक थे। वे खुद जैम आदि तैयार करके, उसे अल्प मात्रा में पॉलीथीन बैग में पैक करके, उत्सव के दिनों में अपने पास आनेवाले साधु-ब्रह्मचारियों को बाँटते रहते थे।

श्रीकान्त महाराज

वे बेलूड़ मठ में स्थित स्वामी विवेकानन्द-मन्दिर में पुजारी थे। बाद में सेवानिवृत्त होकर काशी अद्वैत आश्रम में आए। मैंने उन्हें हमेशा तख्त पर बैठकर, तकिए पर रखकर बंगला में रामकृष्ण-लीलाप्रसंग को पढ़ते हुए पाया। उन्हें हृदय-रोग तथा आहार-नली का रोग था। किन्तु मैं जब भी जाता था, वे कभी कोई समस्या नहीं बताते थे। मैं रविवार को सभी वरिष्ठ साधुओं की चिकित्सकीय जाँच के लिए उनके पास जाता था। एक रविवार को परेशानी होने पर भी उन्होंने कुछ नहीं बताया। मैंने भी उन्हें ठीक ही पाया। चार दिनों बाद मुझे सायंकाल उनकी जाँच के लिए बुलाया गया। उन्हें तेज बुखार था और फेफड़े जकड़े हुए थे। मैंने उन्हें तुरन्त वार्ड में ले जाकर उपचार प्रारम्भ किया। बाद में मैंने उनसे शिकायत की कि परेशानी की शुरूआत में ही वे मुझे सूचित कर सकते थे। इस पर उन्होंने कहा कि शरीर में हमेशा कुछ परेशानी रहेगी। हम छोटी-मोटी चीजों के लिए क्यों चिन्तित हों? उन्होंने यह भी बताया कि एक बार स्वामी माधवानन्द जी ने उनसे पूछा कि वे कैसे थे। उस समय भी उन्होंने उनसे वही कहा था। स्वामी माधवानन्द जी ने इस दृष्टिकोण की प्रशंसा और अनुमोदन किया था।

स्वामी हितानन्द जी (मठ के पुजारी महाराज)

उनका कमरा खूब साफ-सुथरा रहता था और उसमें अत्यल्प सामान था, उन चीजों को बड़ी सुरक्षित और सुव्यवस्थित रखा जाता था।

एक बार जब मैंने उनसे पूजा सिखाने को कहा, तो उन्होंने कहा कि तुम पहले से ही उच्चतर पूजा कर रहे हो अर्थात् रोगियों की शिव भाव से सेवा।

उन्हें पूजा करते देखना एक दर्शनीय दृश्य होता था। वे इतने तन्मय और एकाग्रचित्त रहते कि ऐसा प्रतीत होता मानो उनके लिए श्रीरामकृष्ण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी अस्तित्व में नहीं था।

स्वामी अभयानन्द जी (भरत महाराज)

१९६६ में पहली बार बेलूड़ मठ जाने पर स्वामी अभयानन्द जी (भरत महाराज) से मिला था। मेरे माता-पिता भी वहाँ गए थे और मैं उन्हें मठ के मन्दिरों आदि को दिखा रहा था। बाद में हमलोगों ने दक्षिणेश्वर और काशीपुर उद्यान भवन भी जाने की योजना बनाई थी। मैं तब रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित होने की योजना बना रहा था और अनेक वरिष्ठ साधुओं को यह ज्ञात था। जब हम तीनों, अर्थात् मैं और मेरे माता-पिता, श्रद्धेय भरत महाराज के साथ उनके कार्यालय के सामने खड़े थे, तभी एक अतीव वरिष्ठ संन्यासी स्वामी गंगेशानन्द जी ने मेरे पिताजी से परिहासपूर्वक कहा, ''उसे (अर्थात् मुझे) साधु मत होने देना।'' मेरे पिताजी ने उत्तर दिया, ''मैं उसे रोकनेवाला कौन हूँ। आपको उसे साधु नहीं बनने देना चाहिए।'' स्वामी गंगेशानन्द जी ने उत्तर दिया, ''हमें उसको क्यों रोकना चाहिए? वह एक अच्छा काम करने जा रहा है।'' पिताजी ने कहा, ''नहीं, साधु बनना कोई अच्छा काम नहीं है।'' जोरदार बहस छिड़ गई। किसी तरह मेरी माँ ने पिताजी को शान्त किया और हमलोग नाव से दक्षिणेश्वर चले गए।

बाद में भरत महाराज से मिलने पर उन्होंने मुझे अपने पास बैठाया और दीर्घकाल तक बातें करते हुए मुझे मिशन में न शामिल होने तथा माता-पिता को आघात न पहुँचाने को कहा। उनका नेहरू परिवार, विशेषत: इन्दिरा गाँधी की माँ कमला नेहरू से घनिष्ठ सम्बन्ध था। वे इन्दिरा गाँधी को बचपन से ही जानते थे। धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान होने पर भी वे भरत महाराज से परामर्श लिया करती थीं। वे इनमें से अनेक बातें मुझे बताते रहे। बाद में मैं संघ में सम्मिलित हो गया और १९७०-७१ में ६ माह के लिए बेलूड़ मठ में रहने के लिए आया। मैं श्रद्धेय भरत महाराज के कार्यालय के बिलकुल निकट ही लेगेट हाऊस

में रहा करता था। चूँकि वे मुझे जानते थे, इसलिए उनके हिन्दी भाषी भक्तों के अधिकांश पत्रों के उत्तर हिन्दी में मैं लिखा करता था।

इस दौरान मेरे माता–पिता ने एक नया मकान बनवाया और वे चाहते थे कि मैं गृह-प्रवेश उत्सव में इन्दौर आऊँ। तब मैं बेलूड़ मठ में था और उन लोगों ने मुझे फोन किया। मैंने जाने से इनकार कर दिया। श्रद्धेय भरत महाराज का कार्यालय मठ के फोन बूथ के पास ही था। उन्होंने पूछा और जब मैंने सारी बातें बताई, तो उन्होंने मेरी प्रशंसा की।

१९८० में मेरे संन्यास के तुरन्त बाद ही अर्थात, अगले वर्ष मेरे पिताजी का देहान्त हो गया। ऐसा हुआ कि जब श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्द जी के साथ स्वामी अभयानन्द जी वाराणसी आए, तो मेरी माँ भी वहाँ आ गई थीं। वे इन दोनों साधुओं को प्रणाम करने आईं और मेरे पिताजी के देहान्त के बारे में बताया। तब श्रद्धेय भरत महाराज ने मुझे अपनी माँ की विशेष देखभाल करने का निर्देश दिया और यह देखने को कहा कि माँ को कोई कष्ट न हो।

स्वामी अपूर्वानन्द जी

श्रद्धेय अपूर्वानन्द जी अपने अन्तिम काल (निधन) तक अधिकांश समय तक अद्वैत आश्रम, वाराणसी के अध्यक्ष थे। उसी समय मेरी नियुक्ति वाराणसी सेवाश्रम में हुई। दुर्बल और अशक्त होने तक वे अधिकांश समय तक सन्ध्या आरती किया करते और प्रतिदिन एक भजन गाया करते थे। मैंने कभी भी उन्हें क्रोधित होते नहीं देखा।

उन्होंने 'वेदमूर्ति श्रीरामकृष्ण' नमक एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ सारदा देवी पर संस्कृत स्तोत्रों का संकलन है। उस समय मैं युवक संन्यासी था और स्तोत्र–पाठ आदि किया करता था। उन्होंने इस पर ध्यान दिया था। अत: उन्होंने उस पुस्तक के एक स्तोत्र का पाठ भीमपलासी राग में मुझे सिखाया और नित्य प्रात: मन्दिर में उसका पाठ करने को कहा। जब सेवाश्रम के सचिव महाराज को यह ज्ञात हुआ, तो उन्होंने सेवाश्रम के पुस्तकालय हाल में वह स्तोत्र-पाठ करने को कहा। इस प्रकार वाराणसी सेवाश्रम में स्तोत्र-पाठ प्रारम्भ हुआ। श्रद्धेय अपूर्वानन्दजी ने अद्वैत आश्रम में उसी स्तोत्र पर नियमित साप्ताहिक व्याख्यान भी देने को कहा।

स्वामी वीरेश्वरानन्द जी

श्रद्धेय वीरेश्वरानन्द जी मेरे ब्रह्मचर्य और संन्यास गुरु थे। मैं उनसे रायपुर, वाराणसी और बेलूड़ मठ आदि विभिन्न स्थानों पर मिला था।

संघ में सम्मिलित होने के पूर्व मैंने उनसे पूछा कि मेरे माता-पिता संघ-प्रवेश की अनुमति नहीं दे रहे हैं, तो क्या किया जाय? उन्होंने उत्तर दिया, ''माता-पिता कभी भी संघ–प्रवेश की अनुमति नहीं देते हैं। तुम्हें बिना अनुमति ही संघ में प्रविष्ट होना है।''

एक बार मैंने उनसे पूछा, ''मुझे कितना जप करना चाहिए?'' मैं सोच रहा था कि वे कोई निश्चित संख्या बताएँगे। किन्तु उन्होंने कहा, ''तुम हमेशा भगवान का नाम लोगे।'' उन्होंने यह नहीं कहा कि तुम्हें करना चाहिए, बल्कि यह कहा कि 'तुम करोगे।'

एक बार मैं रात में मन्दिर बन्द होने के पूर्व अर्थात् भोग के तुरन्त बाद बेलूड़ मठ में ठाकुर को प्रणाम करने गया। उसी समय श्रद्धेय आत्मस्थानन्द जी भी आए और जब हम लोग मन्दिर खुलने की प्रतीक्षा कर रहे थे, तभी श्रद्धेय महाराज ने परिहासपूर्वक कहा, ''क्या तुम दवा भूल जा रहे हो?'' तभी श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्द जी भी आ गए। श्रद्धेय आत्मस्थानन्द जी ने उन्हें बताया कि वे मुझसे पूछ रहे थे कि क्या मैं दवा भूल रहा था। तब मैं टी.सी. (ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र) में था। श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्द जी ने कहा, ''किन्तु तुम पूर्व दिनांकित (बैक डेटेड) दवा पाओगे।'' मैं संकेत समझ गया और तब से मैं नित्य नियमित रूप से टी.सी. में रहने तक मेडिकल जर्नल पढ़ने लगा।

मैंने श्रद्धेय महाराज को कार में बैठाकर दो बार कार चलाई थी। पहली बार उस दिन जब उन्हें दीक्षा देना था। उस दिन मैंने परमाध्यक्ष-आवास से मन्दिर तक कार चलाई थी। दूसरी बार कान्हा-किसली जंगल में उन्हें बैठाकर कार चलाई थी, जब वे नेशनल पार्क देखने गए थे।

एक बार जब मैं टी.सी. में था, तब मेरे माता-पिता बेलूड़ मठ आए थे। अतिथि गृह में ठहरे हुए अतिथिगण रात्रि भोजन के बाद श्रद्धेय महाराज से मिलने आया करते थे। मेरे पिताजी ने यह सुअवसर कभी नहीं खोया, क्योंकि वे कहा करते थे कि वे श्रद्धेय महाराज से हमेशा कुछ नया सीखते थे।

टी.सी. में रहते समय कभी ब्रह्मचारियों को श्रद्धेय महाराज से व्यक्तिगत रूप से मिलने और व्यक्तिगत प्रश्नों को पूछने का अवसर मिलता था। मैं भी उनसे मिला था, किन्तु उस समय पूछे गए प्रश्न और उनके उत्तर अब मुझे स्मरण नहीं हैं।

श्रद्धेय महाराज ने रायपुर में मन्दिर का शिलान्यास किया था। तब मैं नहीं था। पहले एक पूर्व निर्मित स्टैण्ड पर एक स्लैब डालने की योजना थी। किन्तु जब श्रद्धेय महाराज आए, तो उन्होंने कहा कि इसे भूमिगत किया जाना चाहिए। अत: तुरन्त स्लैब हटाकर जमीन को लगभग ५ फीट खोदा गया, जिससे नीचे की कुछ सीढ़ियाँ बन जाय। शिलान्यास के समय कुछ अमूल्य हीरे-जवाहरात आदि बहुमूल्य रत्न और कुछ पवित्र अस्थियों को कुछ ईटों पर नीचे रखा जाना था। किन्तु प्लास्टर के लिए सीमेन्ट नहीं थी। मैं तुरन्त दौड़कर गया और कुछ मिनटों में एक डिब्बे में सीमेन्ट लेकर आया।

स्वामी रंगनाथानन्द जी

जहाँ तक स्मरण है, सम्भवत: १९५७ या १९५८ में जब मैं होल्कर कॉलेज, इन्दौर में विद्यार्थी था, तब अपने गृह-नगर इन्दौर में पहली बार स्वामी रंगनाथानन्द जी से मिला और उनका व्याख्यान सुना था। उन्होंने खुले स्टेडियम में व्याख्यान दिया था। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ भी याद नहीं है।

अगली बार मैं उनसे रायपुर और बिलासपुर में मिला। तब मैं लेक्चरर था। मुझे वर्ष याद नहीं है। श्रद्धेय रंगनाथानन्द जी को 'अक्लोरहाइड्रिया' नामक एक जन्मजात बीमारी थी, जिसमें पेट में कोई अम्ल उत्पन्न नहीं होता, जबकि यह पाचन के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। इसके प्रतिपूरक रूप में श्रद्धेय महाराज पीने के दूध में साइट्रिक एसिड लिया करते थे। इस यात्रा के दौरान मैं उनका सेवक था, क्योंकि मैं एक डॉक्टर था। श्रद्धेय महाराज ने मुझे निर्देश दिया था कि एक गिलास दूध में कैसे और कितनी बूँदें साइट्रिक एसिड डालना चाहिए और उसे एक चम्मच से कैसे हिलाना चाहिए। मैं सही समय पर वैसा करके इस प्रकार दही बने दूध को उन्हें दिया करता था।

बिलासपुर में उन्होंने 'मनुष्य निर्माणकारी शिक्षा' विषयक व्याख्यान दिया था और मुझे याद है कि मैंने उसे मनोयोग से सुना था, विशेष रूप से जहाँ उन्होंने स्वामी विवेकानन्द द्वारा कथित 'विचारों के आत्मसातीकरण' को समझाया था। उन्होंने इतिहास, नागरिक शास्त्र जैसे विषयों से उदाहरण दिया और समझाया था कि पढ़े हुए को केवल दुहराने का क्या अर्थ होता था और उसका अभ्यास करके आचरण में उतारने का क्या अर्थ है।

संयोगवश, बहुत बाद में हैदराबाद में भी तीन माह के लिए उनका चिकित्सकीय सेवक था। वे ब्लड शुगर के स्तर के अचानक सामान्य से नीचे गिर जाने के कारण स्नानघर में अचेत हो गए थे। इसलिए मुझे चिकित्सकीय सेवक के रूप में तत्काल भेजा गया। इस अवधि के दौरान मुझे उनके सारे मेडिकल रिकार्ड्स का अध्ययन करने का मौका मिला था। एक रोचक बात का उल्लेख किया जा सकता है। श्रद्धेय महाराज को इन्टेस्टाइनल डायवर्टीकुलोसिस नामक एक और जन्मजात असहजता थी। डायवर्टीकुला एक हालो (खोखली) कैविटी या केनाल में से फैलते हुए एक पाउच के समान होती है। यह आश्चर्यजनक था कि पूरी आँत में असंख्य डायवर्टीकुला विद्यमान थे। आश्चर्यजनक बात यह है कि इनसे उन्हें कभी कोई कष्ट नहीं हुआ। अथवा यदि कोई परेशानी उत्पन्न हुई, तो उन्होंने उससे स्थायी सामंजस्य बैठा लिया था। वे ९० से अधिक वर्षों तक अकलोरहाइड्रिया और डायवर्टीकुलोसिस नामक इन दो जन्मजात रोगों के साथ सफलतापूर्वक जीवन बिता रहे थे !

मुझे रामकृष्ण मठ, चैन्नई द्वारा प्रकाशित भगवद्गीता पर तीन खण्डों वाले उनके भाष्य में से दो खण्डों की समीक्षा करने का सुअवसर मिला था। इसे वेदान्त केसरी में समीक्षा लेख के रूप में प्रकाशित किया गया था। मुझे इसकी २५ प्रतियाँ मिली थीं और उन्हें मैंने श्रद्धेय महाराज को उपहारस्वरूप दिया था। वे इससे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वेच्छा से कुछ भक्तों को इसकी प्रतियाँ उपहार में दी थीं।

स्वामी सत्त्वानन्द जी

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी के पूर्व सचिव तथा सेवाश्रम के प्रारम्भिक चरण में उसके एक सक्रिय कार्यकर्ता रह चुके स्वामी सत्त्वानन्द जी से मैंने निम्नलिखित दो कथाएँ सुनी थीं –

उत्तम वैद्य – प्रारम्भिक दिनों में सेवाश्रम में कार्यरत साधुगण वाराणसी के घाटों और गलियों में जाकर वहाँ पड़े उपेक्षित और असहाय लोगों को लाकर उनकी ईश्वर-बुद्धि से सेवा किया करते थे। स्वामी सत्त्वानन्द जी ने बाताया – एक बार साधुओं ने देखा कि एक व्यक्ति की पीठ पर बड़ा-सा

घाव था, किन्तु वह उससे उदासीन था, क्योंकि वह मानसिक रूप से विक्षिप्त था। साधुओं ने श्रद्धेय स्वामी मुक्तानन्द जी (वन विहारी महाराज) से उसकी मरहम-पट्टी कराने के लिए उसे सेवाश्रम में लाने का निर्णय किया। किन्तु रोगी आने को तैयार नहीं था। साधुओं ने उसे धमकी दी कि यदि वह नहीं चलेगा, तो वे लोग उसकी पिटाई करेंगे। डरकर वह रोगी उनके साथ आ गया। उसे एक एकान्त वार्ड में रखा गया और कमरे में ताला बन्द करके रखा गया ताकि वह भाग न सके। मरहम-पट्टी, अच्छा भोजन और सामान्य देखरेख से उसका घाव शीघ्र ही ठीक हो गया।

अब साधुओं ने उसकी मानसिक विक्षिप्तता के उपचार हेतु एक वैद्य से परामर्श किया। वैद्य ने आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों से तैयार एक काढ़ा पिलाने को कहा। यह काढ़ा बहुत कड़वा होता है और साधुगण इस बात पर एकमत थे कि वह रोगी उसे ग्रहण नहीं करेगा। अत: साधुओं ने बल प्रयोग का निर्णय किया। तैयार काढ़े के साथ दो साधु रोगी के पास गए। उसे पीठ के बल लिटा दिया गया। एक साधु ने उसके सीने पर बैठकर उसके हाथों को पकड़े रखा। एक अन्य साधु ने उसके मुँह में चम्मच डालते हुए आयुर्वेदिक दवा को उसे पिलाया। यह प्रक्रिया रोगी के खुद सहयोग करने तक चलती रही और अन्तत: वह मानसिक रूप से स्वस्थ हो गया। वह अब अपना नाम और पता स्मरण कर सकता था। वह बलिया (उत्तर प्रदेश) का रहने वाला था। साधुओं ने रेल टिकट खरीदकर उसे उसके घर भेज दिया।

श्रद्धेय स्वामी रामकृष्णानन्द जी की कहानी

श्रद्धेय शशी महाराज चैन्नई में थे। किसी कारण उनके कमरे की खिड़की को बन्द करना था। उन्होंने एक भक्त से खिड़की बन्द करने को कहा। अब शशी महाराज के सूटकेस और बिस्तरे को खिड़की के सामने रखा गया था जिसके कारण भक्त को शटर तक पहुँचने में कठिनाई हो रही थी। शशी महाराज ने सूटकेस और बिस्तरे के ऊपर चढ़कर खिड़की बन्द करने को कहा, किन्तु भक्त अपने पैर से शशी महाराज के सामानों को छूकर उसे 'अशुद्ध' कैसे कर सकता था? उसे उस पर चढ़कर जाने को कहने के बावजूद उस भक्त ने वैसा नहीं किया।

तब शशी महाराज ने कहा, ''एक समय ऐसा आएगा, जब भक्तगण हमारे सामानों की पूजा करेंगे, किन्तु हमारा आज्ञा-पालन या निर्देशों का अनुसरण नहीं करेंगे।''

स्वामी सत्त्वानन्द जी का गायन

श्रद्धेय स्वामी सत्त्वानन्द जी बहुत अच्छे गायक थे और रामकृष्ण संघ में इसी रूप में उनकी पहचान थी। वे काली पूजा, दुर्गापूजा के साथ श्रीरामकृष्ण देव, श्रीश्रीमाँ सारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द जी तथा श्रीरामकृष्ण देव के अंतरंग संन्यासी शिष्यों तथा चैतन्य महाप्रभु के जन्मोत्सव समारोह के दौरान काली-कीर्तन और भजन-दल का नेतृत्व करते थे। सचमुच में सभी भजन सर्वाधिक सुरीले होते थे।

स्वामी सत्त्वानन्द जी के गायन का एक विशिष्ट पहलू यह था कि वे सिर, गर्दन और पीठ को बिलकुल सीधे रखकर बैठा करते थे और ऊँगलियों के अतिरिक्त शरीर के किसी भी अंग को नहीं हिलाते और आवश्यक होने पर लिखित गीतों को देखने के लिए ही आँखें और गर्दन हिलाते थे। उन्हें अनेक गान कण्ठस्थ थे।

सामान्यतया, वे सन्ध्या आरती के बाद कभी भी भजन नहीं गाते थे, जैसा कि हमारे आश्रमों के साधु सामान्यत: करते हैं। मैंने उन्हें कभी सन्ध्या-आरती का नेतृत्व करते भी नहीं देखा। फिर भी, विशिष्ट बात यह थी कि वे काली-पूजा, महाशिवरात्रि और श्रीरामकृष्ण देव के जन्मोत्सव के अवसर पर रात्रिव्यापी पूजा के दौरान पूजा-मंडप में आकर एकल गायन किया करते, जो बहुत सुरीला और मनमोहक होता था।

श्रद्धेय स्वामी अपूर्वानन्द जी (श्रीश्रीमाँ के मन्त्र-शिष्य तथा अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष) प्राय: सन्ध्या-आरती का नेतृत्व करते और उसके बाद नित्य एक भजन गाते थे। उनका भी स्वर सुरीला था, किन्तु इन दोनों महान गायकों के कंठ-स्वर की गुणवत्ता में बहुत अन्तर था।

एक घटना

एक बार एक कैंसर रोगी को भर्ती किया गया, जिसके लिए विन्सक्रीस्टीन नामक दवा लिखी गई। उन दिनों यह दवा सहज सुलभ नहीं थी, किन्तु रोगी के परिजनों को वह दवा मिल गई थी। दुर्भाग्यवश वह रोगी मर गया। मरीज के परिजनों ने उस दवा को अस्पताल में दान कर दिया। अब, विन्सक्रीस्टीन का जरूरतमन्द एक अन्य रोगी भर्ती हुआ। रोगी के परिजन धनवान थे और वे उस दवा के लिए सेवाश्रम को भुगतान करने को तैयार थे। जब स्वामी सत्त्वानन्द जी को यह बात बताई गई, तो उन्होंने कहा, ''हमें यह मुफ्त में मिली है और हम इसे मुफ्त ही देंगे। ऐसा ही किया गया

और हम लोगों ने मुफ्त में दी गई इस दवा के बदले रोगी के परिजनों से कोई दान देने का भी अनुरोध नहीं किया।

स्वामी सत्त्वानन्द जी की एक अन्य स्मृति

जब सम्भवत: स्वामी वीरेश्वरानन्द जी रामकृष्ण मिशन के महासचिव थे, तब उनके साथ हुई एक बातचीत के बारे में स्वामी सत्त्वानन्द जी ने एक बार मुझे बताया था। यह वह समय था, जब रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी के कार्यों में एक प्रमुख परिवर्तन होने वाला था। इसके पूर्व साधुजन नर्सिंग, मरीजों के शरीरों को पोंछने, उनकी मरहम-पट्टी आदि कार्य किया करते थे। अब वेतनभोगी कर्मचारियों तथा नर्सों को रखा जा रहा था।

इस प्रसंग में, पुराने समय के एक कार्यकर्ता रह चुके स्वामी सत्त्वानन्द जी ने श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्द जी के पास जाकर ऐसे प्रमुख परिवर्तन के प्रति अपनी नाराजगी प्रकट की, जो सेवाश्रम की मूलभूत अवधारणा में ही बिलकुल बदलाव ला देता था। श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्द जी ने स्वामी सत्त्वानन्द जी के विचारों को धैर्यपूर्वक सुना। फिर उन्होंने शान्त भाव से पूरी समस्या पर दीर्घकाल तक चिन्तन-मनन किया। दीर्घकाल तक मौन रहकर उन्होंने कहा, ''समय के साथ चलो।''

स्वामी गहनानन्द जी

जहाँ तक स्मरण है, मैं श्रद्धेय स्वामी गहनानन्द जी से तब मिला था, जब वाराणसी सेवाश्रम में मात्र एक प्री–प्रोबेशनर था। एक आदरणीय स्वामी और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी के पूर्व सचिव श्रद्धेय स्वामी भास्करानन्द जी (बुद्ध महाराज) बीमार थे और उन्हें रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता में उपचार हेतु ले जाना था। मैं एक ब्रह्मचारी-चिकित्सक के रूप में श्रद्धेय बुद्ध महाराज के साथ कोलकाता गया था।

मैं इसके पूर्व कुछ ही बार कोलकाता गया था, अत: मैं वहाँ कुछ दिन रहकर तारा-मण्डल (प्लेनेटेरियम) जैसे कुछ रोचक पर्यटन स्थलों को देखना चाहता था। किन्तु वहाँ पहुँचने पर पता चला कि सेवा प्रतिष्ठान के तत्कालीन सचिव श्रद्धेय स्वामी गहनानन्द जी ने अगले ही दिन की एक ट्रेन से मेरा वापसी टिकट बुक कर रखा था। (अभिप्राय स्पष्ट था कि कार्य-समाप्ति के पश्चात् साधु को अपना समय इधर-उधर क्यों नष्ट करना चाहिए?)

रोचक बात यह है कि बहुत दिनों बाद एक बिलकुल ही विपरीत बात हुई। तब मैं संन्यासी था और श्रद्धेय स्वामी गहनानन्द जी महासचिव थे। मैं वाराणसी सेवाश्रम में था और मैंने स्थानान्तरण हेतु आवेदन किया था। अपने स्थानान्तरण की पैरवी के लिए मैं श्रद्धेय महासचिव महाराज से व्यक्तिगत रूप से मिलने हेतु बेलूड़ मठ गया। मेरा अनुरोध स्वीकृत नहीं हुआ और मुझे वापस वाराणसी जाने को कहा गया था। जब मैं बेलूड़ मठ में आराम से रह रहा था, तभी संन्यासियों की नियुक्ति के प्रभारी सह-महासचिव महाराज ने श्रद्धेय महासचिव महाराज से इसकी शिकायत करते हुए कहा कि मुझे शीघ्र ही वापस भेजा जाना चाहिए। इस पर श्रद्धेय स्वामी गहनानन्द जी ने कहा, ''किन्तु वह तो बेलूड़ मठ में तीन माह रहना चाहता है।'' किसी भी स्थिति में और यहाँ तक कि स्वामी गहनानन्द जी की इच्छा के बावजूद मुझे एक माह से अधिक वहाँ नहीं रहने दिया गया।

चंडीगढ़ आश्रम के सचिव के रूप में, मैंने श्रद्धेय स्वामी गहनानन्द जी को, भक्तों को मंत्र दीक्षा देने के लिए, दो बार आमन्त्रित किया था। अम्बाला की एक महिला भक्त ठाकुर के प्रति बहुत समर्पित थीं, किन्तु उनके पति बिलकुल विरुद्ध थे। वे बड़ी कठिनाई से और लगभग चोरी–छिपे चंडीगढ़ आश्रम में आया करती थीं। उनकी मंत्र-दीक्षा लेने की प्रबल इच्छा थी और श्रद्धेय स्वामी गहनानन्द जी के वहाँ आगमन के समय वे एक दिन उनसे मिलने आई थीं। उनकी इस दु:खद वेदना को सुनकर श्रद्धेय महाराज ने उन्हें अलग से और घर से उनके पति के दूर रहने की अवधि में दीक्षा देने का निर्णय किया, जिससे वे इस बीच चंडीगढ़ आकर दीक्षा प्राप्त करने के बाद अपने पति के घर लौटने के पूर्व ही लौट सकें। यह योजना सफल रही और उन्हें अकेले ही दीक्षा मिली, अन्य भक्तों के समूह के साथ नहीं। श्रद्धेय महाराज ने मुझसे कहा था, ''उसमें बड़ी भक्ति है।''

स्वामी वेदान्तानन्द जी

स्वामी वेदान्तानन्द जी रामकृष्ण मिशन टी.बी. सेनीटोरियम, राँची के संस्थापकों में से एक थे। बाद में जब वे रामकृष्ण मिशन, पटना के सचिव हुए, तब उन्होंने सार्वजनिक उत्सव के दौरान मुझे व्याख्यान देने हेतु बुलाया था। बाद में वे सेवानिवृत्त होकर काशी-वास हेतु आए।

वाराणसी में श्रद्धेय स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी के पास

शेष भाग पृष्ठ १२२ पर

शिवलिङ्गसूक्तम्

(छन्दः – पंक्तिः)

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

देवपुरातनशिवलिङ्गं, शक्तिविराजित शिवलिङ्गम्।
नन्दिनागयुतशिवलिङ्गं,गणसंसेवितशिवलिङ्गम्।।१।।

अर्थ – शिवलिंग सबसे प्राचीन देवता हैं, उनमें शक्ति विद्यमान हैं, वे नन्दी और नाग से युक्त हैं, सारे गण उनकी सेवा करते रहते हैं।

गङ्गाजलप्रियशिवलिङ्गं, विजयावाञ्छितशिवलिङ्गम्।
भस्मविभूषितशिवलिङ्गं, पुष्पसज्जितशिवलिङ्गम्।।२।।

अर्थ – शिवलिंग को गंगाजल प्रिय है, वे भांग चाहते हैं, भस्म से अलंकृत होते हैं और पुष्प से सज्जित होते हैं।

पयसा पूजय शिवलिङ्गं, पञ्चामृतप्रियशिवलिङ्गम्।
बिल्वदलार्पणशिवलिङ्गं, डमरुवादनशिवलिङ्गम्।।३।।

अर्थ – शिवलिंग की जल से पूजा करो, उन्हें पंचामृत प्रिय है। शिवलिंग पर बिल्वपत्र अर्पित करो और डमरु बजाओ।

सत्त्वप्रकाशनशिवलिङ्गं, सत्यसनातनशिवलिङ्गम्।
नित्यसुदर्शनशिवलिङ्गं, प्रियतमबन्धुर्शिवलिङ्गम्।।४।।

अर्थ – शिवलिंग सत्त्व के प्रकाशक हैं, वे सत्य और सनातन हैं, वे हमेशा सुन्दर दिखलाई पड़ते हैं और वही जीवमात्र के सबसे प्रिय बन्धु हैं।

भवभयहारिशिवलिङ्गं, बन्धविनाशकशिवलिङ्गम्।
भुक्तिप्रदायक शिवलिङ्गम्, मुक्तिप्रदायकशिवलिङ्गम्।।५।।

अर्थ – शिवलिंग संसार के सब भय को दूर करनेवाले हैं, सभी तरह के बन्धन को नष्ट करनेवाले हैं, वही भोग प्रदान करते हैं और वही मोक्ष भी प्रदान करते हैं।

रूपमनोहरशिवलिङ्गं, हर हर वं वं शिवलिङ्गम्।
भक्तसमर्पितशिवलिङ्गं, पूर्णमनोरथशिवलिङ्गम्।।६।।

अर्थ – शिवलिंग का रूप मनोहरी है, उन्हें 'हर, हर वम् वम्'' की ध्वनि प्रिय है, वे भक्तों पर सदा समर्पित रहते हैं और उनके मनोरथों को पूर्ण करते हैं।

तुष्यति त्वरितं शिवलिङ्गं,झटिति फलति शिवलिङ्गम्।
साधु समर्चय शिवलिङ्गं,मृत्युजयं कुरु शिवलिङ्गम्।।७।।

अर्थ – शिवलिंग तुरन्त सन्तुष्ट होते हैं और तत्काल पूजन-फल देते हैं। इसलिए अच्छी तरह शिवलिंग की अर्चना करो और मृत्यु पर विजय प्राप्त करो।

यन्नरपूजितशिवलिङ्गं, मोहविमोचन शिवलिङ्गम्।
शिवमयभूतः शिवलिङ्गं, विशति जनोऽपि शिवलिङ्गम्।।८।।

अर्थ – शिवलिंग की जो मनुष्य पूजा करता है, वह मोह से मुक्त हो जाता है, वह शिवमय हो जाता है, वह स्वयं भी शिवलिंग में समाहित हो जाता है।

शिवलिङ्गार्चनेनेदं सूक्तं पठति यो नरः।
शिवकृपामवाप्नोति शिवत्वमुपजायते।।

अर्थ – जो मनुष्य शिवलिंगपूजन के साथ इस सूक्त का पाठ करता है, वह भगवान शिव की कृपा और शिवत्व प्राप्त करता है।

रात्रि के समय तुम आकाश में अनेक नक्षत्र देखते हो, परन्तु सुर्योदय होने पर नहीं देखते। तो क्या इसी कारण तुम कह सकते हो कि दिन के समय आकाश में नक्षत्र नहीं होते? हे मानव, चूँकि तुम अपनी अज्ञान अवस्था में भगवान को देख नहीं पाते, इसी कारण यह न कहो कि भगवान नहीं है।

भगवान के असंख्य नाम और अनन्त रूप हैं जिनके माध्यम से उनके निकट पहुँचा जा सकता है। जिस किसी भी नाम और रूप में उनकी पूजा करोगे, उसी के माध्मय से उन्हें प्राप्त कर लोगे।

सूर्य पृथ्वी से कई गुना बड़ा है, परन्तु बहुत दूर होने के कारण वह केवल एक थाली जैसा प्रतीत होता है। उसी प्रकार भगवान अनन्त हैं, किन्तु उनसे बहुत दूर होने के कारण हम उनकी वास्तविक महिमा का अनुभव नहीं कर पाते। **– श्रीरामकृष्ण देव**

होली विशेष

होली के विविध रंग

राजेश कश्यप, रोहतक, हरियाणा

फाल्गुन मास की पूर्णिमा को रंगों का त्यौहार होली सबके लिए खुशियों व उमंगों की झोली भरकर लाता है। इस पर्व पर प्रेम और प्यार की बयार और प्रकृति का शृंगार देखते ही बनता है। यूँ तो हमारा देश त्यौहारों का देश है। लेकिन यदि होली को त्यौहारों का त्यौहार कहाँ जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्रेम प्रसार का प्रतीक पर्व होली सबके मन में उत्साह, उमंग तथा प्रेम का संचार करता है। सभी नर-नारी, बच्चे-बूढ़े इस पर्व पर एक-दूसरे को रंग लगाते हैं और अबीर, गुलाल उड़ाते हुए झांझ, मृदंग, मंजीरे, ढोलक, डपली बजाकर हँसते, गाते तथा नाचते हैं। कहना न होगा कि इस प्रेम के पावन पर्व पर सभी ऊँच-नीच, छोटा-बड़ा, जाति-पाति, छुआछूत आदि सब भेद-भाव भूला दिए जाते हैं और इसीलिये सभी आपसी दोष-शिकायत भी समाप्त हो जाते हैं।

देश के कोने-कोने में होली उत्सव भिन्न-भिन्न ढंग से मनाया जाता है। हरियाणा में होली के एक दिन बाद 'फाग' (धुलेंडी) के रूप में मनाया जाता है। स्त्रियाँ, पुरुषों को कपड़े का 'कोलड़ा' बनाकर मारती हैं और पुरुष उनके वारों से बचते हुए उन्हें रंगों से सराबोर कर डालते हैं। सभी एक दूसरे को पानी व रंगों से भिगो देते हैं। सब लोग आपसी बैर-भाव भूलकर एक-दूसरे के संग होली मनाते हैं।

भारतवर्ष में होली का त्यौहार अत्यन्त उमंग, उत्साह एवं उल्लास के साथ मनाया जाता है। मथुरा, वृन्दावन, गोकुल व बरसाने की होली का तो कहना ही क्या! यहाँ की होली तो न केवल भारतवर्ष में; बल्कि पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। क्योंकि यहाँ पर कभी राधा-कृष्ण व गोपियाँ मिलकर होली खेल चुके हैं और रास रचा चुके हैं।

देशभर से लोग मथुरा में होली खेलने पहुँच जाते हैं। वृन्दावन में तो सुबह होते ही पूजा-अर्चना के साथ ही होली का मनमोहक खेल आरम्भ हो जाता है। सभी लोग गुलाल, टेसू के फूल, केसर तथा चन्दन आदि के मिश्रित रंगों से एक-दूसरे को रंगते हैं, हास-परिहास करते हैं। अबीर, गुलाल को देखकर प्रकृति का कण-कण भी झूम उठता है।

नन्दगाँव में भी होली को बड़े उमंग व उत्साह से मनाया जाता है। यहाँ पर भगवान श्रीकृष्ण ने नन्दजी के घर यशोदा माता की गोदी में अपना बचपन बिताया था। यहाँ पर बरसाना आदि पड़ोसी गाँवों से भी लोग होली खेलने व यहाँ के मंदिरों में पूजा-अर्चना करने आते हैं। खूब हुड़दंग होता है। भगवान श्रीकृष्ण भी गोपियों संग यहाँ खूब हुड़दंग मचाते थे। कवि पद्माकर ने होली के रंग में रँगी गोपिका के माध्यम से लिखा है –

ये नंद गाँव तो आए यहाँ,
उन आह सुता कौन हुँ ग्वाल की
दीठि से दीठि लगी इनके,
उनकी लगी मूठि सी मुठि गुलाल की।

इसी सन्दर्भ में शृंगार रस के प्रसिद्ध कवि बिहारी ने लिखा है –

देर करी एक चतुराई,
लाल गुलाल सौ लीन्ही मुठिमरी,
बाल की भाल की ओर चलाई,
वा दृग मूंदि उतै चितई
इन भेटी हते वृषभान की जाई ...।

संत कबीर ने होली को इन शब्दों में शोभायमान किया है –

ऋतु फागुन नियरानी हो,
कोई पिया से मिलावे।
सोई सुंदर जाको पिया को ध्यान है,
सोई पिया की मनमानी,
खेलत फाग अंग नहिं मोड़े,
सतगुरु से लिपटानी।
इक इक सखियाँ खेल घर पहुँची,
इक इक कुल अरुझानी।
इक इक नाम बिना बहकानी,
हो रही ऐंचातानी।।
पिय को रूप कहाँ लगि बरनौं,
रूपहि माहिं समानी।
जौ रँगे रँगे सकल छवि छाके,
तन-मन सबहि भुलानी।
यों मत जाने यहि रे फाँग है,
यह कछु अकथ-कहानी।

कहैं कबीर सुनो भाई साधो,
यह गति विरलै जानी।।

बरसाने की होली बड़ी अनूठी होती है। यहाँ पर 'लठमार' होली खेली जाती है। इस दिन बरसाने की स्त्रियाँ, नन्दगाँव के पुरुषों को डण्डों से पीटती हैं। पुरुष लाठियों तथा अन्य ढंग से ढाल बनाकर स्त्रियों के वारों को निष्फल कर उन्हें चिढ़ाते हैं। खूब हास-परिहास होता है, हुड़दंग मचता है, रंग व गुलाल से पूरा वातावरण रंगमय हो जाता है।

मथुरा के फालैन गाँव में तो होली की पौराणिक घटना को दोहरा कर यह पर्व खुशी व उल्लास के साथ मनाया जाता है। यहाँ पर गाँव के बीच में लकड़ी, उपलों व फूस इत्यादि से बहुत बड़ी होली जलाई जाती है और आग लगाकर भयंकर लपटों के बीच प्रह्लाद के सकुशल बचने की कहानी खेली जाती है। इसके बाद सभी नर-नारी होली के रंगों में रंग जाते हैं।

वाराणसी की होली भी बहुत चर्चित है। इतिहास बताता है कि सम्राट हर्षवर्धन के शासनकाल में यहाँ पर होली

भगवान विश्वनाथ धाम, वाराणसी में होली

उत्सव चरम पर होता था। इस दिन की रंगीनियों को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस प्रकार कलम बद्ध किया है –

गंग भंग दो बहने हैं, सदा रहत शिव संग।
मुर्दा तारन गंग है, जिंदा तारन भंग।।

वाराणसी में भी भगवान विश्वनाथ की नगरी में होली मनाने का अपना एक अनूठा ढंग है। सुबह रंग की होली और अपराह्न में गुलाल से होली खेली जाती है। पूरे शहर के विभिन्न कॉलोनियों से जुलूस निकालकर नाचते-गाते हुए दशाश्वमेध घाट पर आते हैं, नौका-विहार भी करते हैं।

पंजाब में होली उत्सव पर होली मेले का और हिमाचल में 'ददोध' पौधे के पूजन का आयोजन होता है। राजस्थान के बाड़मेर जिले में होली पत्थरों से खेली जाती है। इसके अलावा पूरे राजस्थान में होली के सात दिन बाद सप्तमी को भी रंगों की होली खेली जाती है। कहीं-कहीं तो होली 'दही' व 'मट्ठों' से खेली जाती है। महाराष्ट्र में होली के पर्व पर सुगंधित चंदन से युक्त रंग में एक-दूसरे को रंग डालते हैं। कहीं-कहीं पर तो समूहों में नाच-गाना भी होता है और ग्राम देवता की पूजा-अर्चना भी की जाती है। मणिपुर में होली को 'योसंग' के रूप में मनाया जाता है।

बिहार की होली बड़ी विचित्र है। कुछ जिलों में प्रात: ८ बजे से धूल-राख, मिट्टी, कीचड़ से होली खेलते हैं। स्नानकर नये कपड़े पहनकर १२ बजे से २ बजे तक रंग की होली खेलते हैं। फिर पूआ-पकवान खाकर ३ बजे से अबीर की होली खेलते हैं। देवस्थान में और घर-घर में ढोलक-झाल के साथ होली के गीत गाते हैं। छत्तीसगढ़ में होली लोग रंग-गुलाल से खेलते हैं। माताएँ १२ बजे से आपस में रंग खेलती हैं। रातभर नगाड़े बजाकर फाग के गीत गाते हैं।

बंगाल में लोग पीले वस्त्र पहनकर एक-दूसरे को रंग में रंगते हैं और उसके बाद हँसते, गाते व नाचते हैं। गुजरात में तो होली-उत्सव पर डांडिया नाच होता है। यहाँ पर तो लोग हल्दी, केसर, कुमकुम, चंदन आदि का एक-दूसरे को तिलक लगाकर बधाई भी देते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय पर्व होली समस्त राष्ट्र में पूरी श्रद्धा, उमंग व उल्लास के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार से मनाई जाती है।

रंगो का रंग-रंगीला त्यौहार होली केवल अपने देश में ही नहीं, बल्कि सीमा के पार विश्व के कई देशों में बड़े उमंग व उत्साह के साथ मनाया जाता है। यह दूसरी बात है कि इस पर्व को अन्य नामों के साथ मनाया जाता है।

अमेरिका में होली को 'होबो' के नाम से, नेपाल में 'होली', बर्मा में 'तेच्यो' के नाम से, मिस्र में 'अंगारों की होली' के रूप में, अफ्रीका में 'आमेन बोग' के नाम से, चीन में 'च्वेज' के नाम से, इटली में 'बेलिया को नोस' के नाम से, यूनान में 'नेपोल' के नाम से, चौकोस्लोवाकिया में 'बेलिया कोनेस' के नाम से और रूस में भी इसे अनूठे अंदाज से मनाया जाता है। इस प्रकार कुल मिलाकर कहें, तो होली के रंगों व उमंगों की छटा पूरे विश्व में बिखरती है और होली की उमंग हर सीमा, जाति-पाति, -धर्म-सम्प्रदाय, छोटा-बड़ा, देश-विदेश आदि को भंग करती है तथा सभी को प्रेम-स्नेह के बन्धन में बाँधती है। ○○○

पुत्र को शूरवीर बनाने वाली माँ : जयवन्ता बाई

अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस विशेष

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

महाराणा प्रताप सिंह सर्वदा यही कहते थे, ''मैंने माँ से बहुत कुछ सीखा है। यदि मैं आज महान् प्रजा पालक एवं शासक हूँ, तो इसका श्रेय केवल मेरी माँ को जाता है, क्योंकि यह प्रशिक्षण मुझे माँ से ही मिला है।''

आइए जानते हैं महाराणा प्रताप जैसे शूरवीर को जन्म देनेवाली महारानी जयवन्ता बाई के विषय में। जयवन्ता बाई राजस्थान के जालौर की एक रियासत के अखेराज सिंह सोनगरा चौहान की पुत्री थीं। विवाह के पहले इनका नाम जीवन्त कँवर था। जीवन्त कँवर का विवाह महाराणा उदय सिंह से हुआ और विवाह के बाद उनका नाम महारानी जयवन्ता बाई हुआ। जयवन्ता बाई ने सन् १५४० में पुत्र प्रताप सिंह को जन्म दिया। प्रताप सिंह के जन्म लेते ही महाराणा उदय सिंह ने चितौड़ पर विजय प्राप्त की तथा जयवन्ता बाई इस विजय यात्रा में उनके साथ थीं।

जयवन्ता बाई एक कुशल प्रशासक एवं सलहाकार भी थीं। उदय सिंह को राजनैतिक सलाह भी देती थीं। वे सर्वदा प्रजा के हित में निर्णय लेती थीं। यहाँ तक कि राणा उदय सिंह भी अनेक बार कई निर्णय लेने से पहले महारानी जयवन्ता बाई से विचार-विमर्श करते थे।

जयवन्त बाई ने प्रताप सिंह को बचपन से ही धर्म, वेद, उपनिषद् का ज्ञान देना प्रारम्भ किया और अपने से बड़ों और छोटों-से किस प्रकार का आचरण करना चाहिए, यह भी सिखाया।

प्रताप की माँ ने उन्हें यह भी सिखाया था कि अपने आदर्शों, सिद्धान्तों, धार्मिकता के प्रति सदैव अडिग रहना और किसी भी प्रकार उन्हें किसी के अधीन नहीं होने देना। प्रताप सिंह ने अपने शासनकाल में माँ द्वारा बीजारोपित गुणों एवं संस्कारों का निर्वहन किया। इसका पता इस बात से चलता है कि जब उनकी आपसी फूट एवं पारिवारिक कलह का लाभ उठाकर मुगलों ने चित्तौड़ पर विजय प्राप्त की और इसके अतिरिक्त कई राजपूत शासकों ने अकबर के डर और राजा बनने की मंशा के कारण उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी, तब भी उदय सिंह और प्रताप सिंह ने मुगलों के आगे घुटने नहीं टेके और न ही उनकी अधीनता स्वीकार की।

महाराण प्रताप सिंह अपने पिता की तुलना में माँ जयवन्ता बाई के अधिक समीप रहे। यही कारण है कि राज्य में शासन करने की नीतियों एवं प्रणालियों को उन्होंने बचपन में ही सीख लिया था। उनकी माँ ने उन्हें इस प्रकार प्रशिक्षित किया कि उनके शासनकाल में मेवाड़ में कोई चोरी नहीं हुई। माँ से प्राप्त युद्ध कौशल एवं रणनीति के अनुभव के कारण ही महाराणा प्रताप सिंह ने हल्दी घाटी के युद्ध में अकबर के युद्ध कौशल को धराशायी कर दिया।

माता जयवन्ता बाई महाराणा प्रताप की पहली गुरु थीं। जयवन्ता बाई को घुड़सवारी में भी महारथ प्राप्त था और उन्होंने अपने पुत्र को भी विश्व का सबसे अच्छा घुड़सवार बनाया। जयवन्ता बाई कृष्ण भक्त थीं और हर क्षण ईश्वर नाम संकीर्तन करती थीं। इसलिए माँ ने प्रताप के जीवन में श्रीकृष्ण के युद्ध कौशल को भी उतारा। जयवन्ता बाई ने ही प्रताप सिंह को बचपन में पहली बार तलवार चलाना सिखाया था।

जयवन्ता बाई ने प्रताप सिंह के जीवन में आत्मविश्वास, बाहदुरी, दृढ़निश्चय, आदर्श एवं सिद्धान्त इस प्रकार रेखांकित किए, जिसकी छाप उनके मानस पटल पर सदैव के लिए अंकित हुई थी। इसका स्पष्ट उदाहरण इस घटना से मिलता है। एक बार एक मुगल अधिकारी प्रताप सिंह के विरुद्ध कार्यवाही कर रहे थे, तभी प्रताप सिंह के पुत्र अमर सिंह ने मुगल शिविर की स्त्रियों को पकड़कर प्रताप के सामने लाये। परन्तु उन्होंने अपने सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं किया और अपने पुत्र को तुरन्त आदेश दिया कि इन सभी स्त्रियों को आदर के साथ सुरक्षापूर्वक वापस मुगल शिविर में पहुँचा दिया जाए।

माँ शब्द के सुनते ही हम सभी मातृत्व की स्तुति करना प्रारम्भ करते हैं – ***जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी –*** जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान है।

इस प्रकार हम देखते हैं एक आदर्शवादी, धर्मपरायण एवं सिद्धान्तवादी माता अपनी सन्तान का सर्वांगीण विकास करके उसे एक महान् सम्राट बना सकती है। धन्य है भारत की यह धरती जहाँ महारानी जयवन्ता बाई जैसी मातृशक्ति ने जन्म लिया। ऐसी माँ जयवन्ताबाई को शत-शत नमन! ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (९)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

श्रीमहाराज उवाच

मथुरेण न तद्वाक्ये सम्यग्विश्वास आस्थितः।
तत्त्वद्धा वस्तुतो दृष्टमेकदा दक्षिणेश्वरे।।१६।।
जवाविटपिशाखेषु फुल्लं कुसुमलोहितम्।।
शाख एकतरस्मिंश्चान्यतरस्मिन् सितं तथा।।१७।।

अनुवाद : श्रीमहाराज कहते हैं – परन्तु मथुर बाबू को उनकी (श्रीरामकृष्ण की) बातों में पूर्ण रूप से विश्वास नहीं हुआ। वास्तव में एक दिन देखा गया कि दक्षिणेश्वर के बगीचे में जवा (गुड़हल) वृक्ष की एक डाली में सफेद एवं दूसरी में लाल फूल खिला हुआ है।।१६-१७।।

सवृन्तं शाखमादाय ह्येत्य सपुष्पकद्वयम्।
सपदि दर्शयामास मथुरं स जगत् प्रभुः।।१८।।

अनुवाद : तत्क्षण जगत के प्रभु ठाकुरजी ने दोनों फूलों सहित पूरी डाली को लाकर मथुर बाबू को दिखाया।।१८।।

दृष्ट्वेदं विस्मयाविष्टः स मथुरोऽवदत् पितः।।
नाहं गच्छामि तर्काय कदापि भवता सह।।१९।।

अनुवाद : यह देखकर मथुर बाबू ने आश्चर्यचकित होकर कहा, 'बाबा, मैं पुनः कभी भी आपसे तर्क नहीं करूँगा'।।१९।।

साकारञ्च निराकारञ्च नु जानासि कीदृशम्।।
तद्वदेव प्रभेदः स्यात् यद्वन्नीरतुषारयोः।।२०।।

अनुवाद : श्रीरामकृष्ण कहते हैं – साकार एवं निराकार कैसा है, जानते हो? जैसे जल और बर्फ।।।२०।।

नीरं यदा घनीभूतं साकारत्वं किलाप्यते।।
विगल्य तत् यदा नीरं निराकारं भवेत्तदा।।२१।।

अनुवाद : जब जल जमा हुआ रहता है (अर्थात् बर्फ बना होता है), तब साकार है और वह जब पिघलकर जल हो जाता है, तब निराकार हो जाता है।।२१।।

शयानः शय्यां भीष्मदेवो महाबलः।।
स च प्रयाणकालेऽप्यश्रुं किल विससर्ज ह।।२२।।

अनुवाद : महाबलशाली भीष्मदेव ने देह-त्याग करते समय शर-शय्या पर शयन अवस्था में अश्रु विसर्जन किया था।।२२।।

दृष्ट्वेदमर्जुनः प्राह श्रीकृष्णं हे जनार्दन।।
पश्य भ्रातः किमाश्चर्यं यो वा इत्थं पितामहः।।२३।।
वसूनां वसुरष्टानां सत्यवादी जितेन्द्रियः।।
प्राज्ञश्च सन् प्रयाणात् प्राक् सोऽपि क्रन्दति मायया।।२४।।

अनुवाद : यह देखकर अर्जुन श्रीकृष्ण से कहने लगे, 'हे जनार्दन ! हे भ्राता ! देखो, क्या आश्चर्य है ! पितामह, जो सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी तथा अष्टवसुओं में से एक वसु हैं, वे भी प्रयाण के पूर्व अर्थात् देहत्याग करते समय इस प्रकार माया के वशीभूत होकर रो रहे हैं।।२३-२४।।

संपृष्टः सन् स कृष्णेन भीष्मः प्रोवाच केशवम्।।
सम्यग् ज्ञातोऽसि कृष्ण त्वं नेतद् रोदनकारणम्।।२५।।

श्रीकृष्ण द्वारा पितामह भीष्म को पूछे जाने पर वे श्रीकृष्ण से कहने लगे, "हे कृष्ण ! आप भलीभाँति जानते हैं कि देहत्याग मेरा रोने का कारण नहीं है।।२५।। **(क्रमशः)**

कविता

जय महेश गौरीपति शंकर

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

जय महेश गौरीपति शंकर, करूँ प्रणाम तुम्हें मैं भयहर ।
तुम ही पशुपति तुम काशीश्वर, तुम ही सकल जगत के शुभकर।।
तुम्हीं आदि कारण इस जग के, तुम्हीं व्याप्त सर्वत्र दिगम्बर।
चिर प्रकाश तुम अखिल विश्व के, भस्मविभूषित हो तुम शशिधर।।
निराकार-साकार तुम्हीं हो, पंचवदन हो तुम पिनाकधर ।
प्रणवतत्त्व से तुम गोचर हो, तुम्हीं सृष्टिपालक विनाशकर।।
नीलकण्ठ हो तुम वृषभध्वज, तुम्हीं जटाधारी गंगाधर।
महाकाल तुम ओंकारेश्वर, तुम्हीं महेश्वर अरु देवेश्वर ।।
अज अविनाशी पूर्णकाम हो, कामदलन परमेश्वर सुन्दर।
शरण तुम्हारे मैं आया हूँ, कृपा करो अखिलेश परात्पर।।

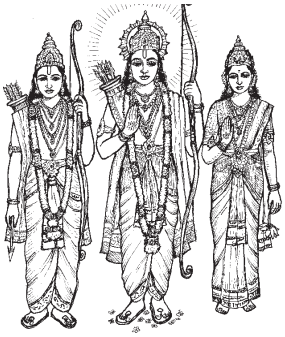

रामराज्य का स्वरूप (५/२)

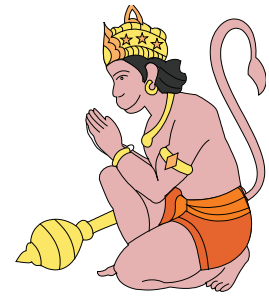

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)

जैसे इस समय आप पृथ्वी की ओर देखें, तो पृथ्वी अलग-तरह की दिखाई देती है और जब वर्षा ऋतु होती है, उस समय आप पृथ्वी को देखें, तो पृथ्वी अलग रूप में दिखाई देती है। वर्षा ऋतु में पृथ्वी पर कितने कीड़े-मकोड़े, कितने जन्तु निकल आते हैं, देखकर आश्चर्य होता है। ये सब कीड़े मकोड़े, जन्तु क्या मेघ के द्वारा बरसाए जाते हैं? बल्कि कहना यह चाहिए कि वे कीड़े-मकोड़े पृथ्वी के अन्तराल में छिपे हुए हैं और जब वर्षा होती है, तो जो कीड़े छिपे हुए हैं, वे भीतर से बाहर निकल आते हैं। कैकेयीजी का अन्त:करण भी इसी तरह दो बातों से मिला-जुला बना हुआ है। एक तो महारानी कैकेयी महाराज कैकय नरेश की पुत्री हैं और कैकय नरेश की पुत्री होने का अर्थ क्या हुआ? क्रिया का जन्मदाता कौन है? कैकेयी के पिता कौन हैं? उसको अगर सरल भाषा में कहें, तो यही कहेंगे कि क्रिया का जन्म कर्तृत्व से होता है। मैं कर्ता हूँ, ऐसा मान कर व्यक्ति कर्म करता है। वहाँ कर्तृत्व ही महाराज कैकय हैं और कैकेयी क्रिया हैं। जहाँ कर्तृत्व और क्रिया है, उसका परिणाम क्या होता है? सबसे बड़ी समस्या क्रिया में यह है कि फल पाने की आकांक्षा बड़ी तीव्र होती है। क्रिया के साथ व्यक्ति सबसे पहले यह पता लगाता है कि इस क्रिया के बदले मुझे मिला क्या या मिलेगा क्या? क्रिया के बदले में कुछ पाने की आकांक्षा, यही कर्म के साथ दो बातें जुड़ी हुई हैं – आदि में कर्तृत्व और अन्त में फलाकांक्षा और इसी के अन्तराल में है क्रिया। यही समस्या कैकेयीजी के साथ जुड़ी हुई है। महाराज कैकय कर्तृत्व हैं और कैकेयी जी हैं क्रिया। फलाकांक्षा कब प्रगट हुई? महाराज दशरथ ने जब कैकेयी के सौन्दर्य का वर्णन सुना और सुनकर जब उनके मन में कैकेयी से विवाह की आकांक्षा उत्पन्न हुई, तो उन्होंने कैकय नरेश के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा। अब विवाह में दो प्रकार की बातें हैं। कौशल्या और सुमित्रा से भी तो महाराज दशरथ का विवाह हुआ और कैकेयी के साथ भी विवाह हुआ। पर वहाँ कौशल्या और सुमित्रा के विवाह में क्रिया के साथ समर्पण की वृत्ति जुड़ी हुई है और महाराज दशरथ और कैकेयी के विवाह के सन्दर्भ में कर्म फलाकांक्षा से जुड़ी हुई है। विवाह के दो रूप हैं। एक रूप तो यह है कि कन्या के पिता वर के प्रति अपनी कन्या का अर्पण करता है। लेकिन जब कोई कन्या का अर्पण करता है, तो वह अपनी कन्या के बदले में कोई मूल्य लेता है क्या? बस, यह दृष्टान्त तो विवाह के प्रसंग में देखने को मिल सकता है। बल्कि कहना यह चाहिए कि वर से बदले में पिता तो कुछ चाहता ही नहीं, बल्कि वह कन्या के साथ-साथ अन्य वस्तुएँ भी वर के प्रति अर्पण करता है। विवाह का एक पक्ष वह है, जो समर्पणमूलक है। कर्म का एक पक्ष यह भी है कि कर्म करो –

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।९/२६।।

जितना कर्म करे, जितनी क्रिया करे, सबका समर्पण करे, विवाह के भी मंत्रों को आप पढ़ेंगे, सुनेंगे, तो उसमें कहा गया है कि अगर व्यक्ति मानकर देंगे, तो लेन-देने की भावना बनी रहेगी। इसलिए कन्या को अर्पित करते समय जिन मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, उस समय वर को विष्णु के रूप में और कन्या को लक्ष्मी के रूप में माना जाता है, रामायण में भी यह बात दोहराई गई

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी बिस्व कल कीरति नई।।
१/३२३/२१

जैसे समुद्र ने लक्ष्मी का अर्पण भगवान के प्रति किया, इसी प्रकार से विवाह के मंत्रों में कहा जाता है कि ये साक्षात् विष्णु ही वर के रूप में आए हुए हैं और मैं अपनी कन्या, जो लक्ष्मी रूपा है, वह तो वस्तुत: भगवान की ही वस्तु है, मैं भगवान की शक्ति को भगवान को अर्पित कर रहा हूँ। इस तरह से विवाह का जो सर्वोत्कृष्ट पक्ष है, वह क्रिया को सही दिशा में प्रेरित करने वाला है। अगर उसका सही-सही अर्थ लिया जाय, सही सदुपयोग किया जाय तो। आज के सन्दर्भ में तो इसकी कल्पना ही कहाँ है, आज तो उसके साथ कितने अनर्थ जुड़े हुए हैं, लेकिन विवाह का सही अर्थ लें, तो क्रिया में समर्पण की वृत्ति है। गोस्वामीजी ने कहा न! कि जनकपुर के दूत जब पत्रिका लेकर महाराज श्रीदशरथ के पास गये और उनको वह पत्र दिया, तो महाराज दशरथ इतने प्रसन्न हुए कि रत्न मँगाकर, वस्त्र मँगाकर बाँटने लगे –

दूतन्ह देन निछावरि जागे।

उनको निछावर देने लगे। और दूतों ने

कहि अनीति ते मूदहिं काना। १/२९२/८

महाराज, हम आपसे कुछ लेंगे थोड़े ही। प्राचीन परम्परा तो यहाँ तक थी कि जहाँ कन्या ब्याही जाय, उस गाँव में कन्या पक्ष के लोग जल तक नहीं पीते थे। रूढ़ि की बात अलग है, पर उसके पीछे निष्कामता की पराकाष्ठा थी, जहाँ समर्पण ही समर्पण है, बदले में कुछ भी पाने की आकांक्षा नहीं है। तो क्रिया के साथ जहाँ समर्पण है, वहाँ संघर्ष नहीं है। जहाँ क्रिया के साथ व्यापार है, बस क्रिया के साथ यह बड़ी समस्या है। यही अन्तर है। कौशल्याजी और सुमित्राजी के विवाह में समर्पण है, पर कैकेयीजी के विवाह में समर्पण नहीं है, कर्म फलाकांक्षा है। कैकय नरेश ने कहा कि मैं अपनी कन्या तो दूँगा, पर महाराज को यह वचन देना होगा कि मेरी कन्या के गर्भ से जिस पुत्र का जन्म होगा, वही अयोध्या के राज्य का उत्तराधिकारी होगा। बस यह जो क्रिया के साथ फल की आकांक्षा है, उसका एक रहस्यपूर्ण कारण है कि मूल्य कौन देगा? रामायण में जब रामराज्य का वर्णन किया गया, तो रामराज्य का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने अनोखी बात कही –

बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।

भगवान राम के नगर में बजाजों, सराफों और व्यापारियों सबके बड़े विशाल भवन बने हुए थे, दुकानें बनी हुई थीं। पूछा गया कि व्यापार का सिद्धान्त रामराज्य में क्या था? तो बड़ी अनोखी बात कह दी गई। रामराज्य में व्यापार का सिद्धान्त कहा गया –

बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।

७/२७/११

और व्यापार का सिद्धान्त क्या था? बोले

बस्तु बिनु गथ पाइए।

वस्तु बिना मूल्य के मिलती थी। कई लोगों के मन में यह बात समझ में नहीं आती। कोई दुकान हो और वहाँ वस्तु का कोई मूल्य न हो?

दुकान, वस्तु और उसका मूल्य, बस, झगड़े की जड़ यही है।

क्यों? क्योंकि वस्तु बेचनेवाले के मन में जो मूल्य पाने की इच्छा है, वह जो मूल्य निश्चित करता है वस्तु का, वह अपनी इच्छा से करता है और उसके मन में अधिक से अधिक लाभ लेने की वृत्ति होती है। लाभ की मात्रा बढ़ते-बढ़ते लोभ की सीमा में पहुँच जाती है। तब परिणाम क्या होता है? जहाँ पर व्यापारी लोगों से अधिक से अधिक मुनाफा लेने की चेष्टा करेगा, वहाँ पर स्वार्थपरता और ग्राहक और दुकानदार के बीच में एक होड़ होगी। ग्राहक कम कीमत देकर अधिक से अधिक और अच्छी से अच्छी वस्तु ले लेना चाहेगा और दुकानदार अधिक से अधिक लाभ कमा लेना चाहेगा, इस प्रकार की टकराहट बनी रहेगी। अब वस्तु बिना मूल्य के कैसे बिकेगी? इसका अर्थ है कि वस्तु और मूल्य का कोई सम्बन्ध रामराज्य में नहीं था। यह नहीं कि अन्न इस भाव में बिकेगा, कपड़ा इस भाव में बिकेगा। सोना इस भाव में बिकेगा। तब? सिद्धान्त क्या है? आप गल्ले के दुकान में जाइए और आपको जितना गल्ले की आवश्यकता है, बिना मूल्य के ले आइए और इसी प्रकार से गल्ला बेचनेवाले को जिन वस्तुओं की अपेक्षा है, ले आता है। वस्तु के लिए मूल्य की अपेक्षा नहीं है, मूल्य तो है ही नहीं। कर्तव्य की भावना से अपना कर्म कीजिए और आवश्यकता के अनुकूल परिणाम पाइए। व्यवहार का यह बड़ा विचित्र सूत्र रामराज्य में बना हुआ था। प्रत्येक व्यक्ति जहाँ जिस दुकान में जाता था, अपनी आवश्यकता के अनुकूल वस्तु ले आता था। दुकानदार भी, जो उसकी आवश्यकता होती थी, वह दूसरे दुकान से लेता था। इस

प्रकार से गोस्वामीजी कहते हैं कि रामराज्य में वस्तु और मूल्य का सिद्धान्त नहीं था। इसको अगर व्यापक अर्थों में देखें, तो रामराज्य का सूत्र क्या है। सारे झगड़े की जड़ लोभ की व्यापक वृत्ति है, उसमें भी व्यक्ति दुकान में जो वस्तु मिलती है, उसका मूल्य तो कुछ निश्चित भी है, पर जीवन में जब हम सद्व्यवहार करते हैं, कुछ कर्म करते हैं, तो उसका मनमाना मूल्य हम लगा दिया करते हैं।

मुझे चुटकुले तो आते ही नहीं, लेकिन आज प्रेमचन्दजी ने सुनाया तो सुनकर हँसी आ गई। उन्होंने कहा कि किसी व्यक्ति ने एक चित्र बनाया और उसका मूल्य पचहत्तर हजार रुपये लिख दिया। पत्नी ने पूछ दिया कि ऐसे रद्दी चित्र को पचहत्तर हजार में खरीदेगा कौन? बोला, कोई खरीदे या न खरीदे पर अपने घर में पचहत्तर हजार की पूँजी है, यह दावा तो है ही। इसका अर्थ यह हुआ कि अपनी वस्तु का मूल्य चाहे जितना बढ़ा दीजिए, चाहे जिस सीमा तक पहुँचा दीजिए और आप आशा करिए कि दूसरे या तो उस मूल्य में खरीदें या आप यह गर्व करिए कि आपने कितनी मूल्यवान वस्तु अपने घर में संग्रहित कर रखें हैं। यह सिद्धान्त ही समस्या है।

गोस्वामीजी ने एक सूत्र और दिया। यह जो 'वस्तु बिनु गथ पाइए' का आदर्श था, वह अयोध्यावासियों ने वनवासियों से सीखा था। जब भगवान श्रीराम वन में निवास कर रहे थे, तो अयोध्यावासी गये और जब अयोध्यावासियों को वनवासियों ने देखा, तो उन्हें राम के प्रति इतनी अभिन्नता का अनुभव हुआ कि उन्हें लगा कि हमारे प्रभु श्रीराम के यहाँ अतिथि आए हुए हैं। अयोध्यावासियों को तो उन्होंने अतिथि माना और भगवान राम को उन्होंने अपने घर का, परिवार का माना। जब अतिथि आवें, तो उन्हें खिलाना-पिलाना चाहिए। अगर अतिथि भोजन-सामग्री अपने साथ लेकर आवे और अपना ही भोजन बनाकर खावे, तो यह गृहस्वामी के लिये बड़ी लज्जा की बात है। गोस्वामीजी ने लिखा कि जब वनवासियों ने सुना कि अयोध्या के नागरिक आए हैं, तो वे कॉवरों में सजाकर कन्द-मूल फल, शहद लेकर आए। अयोध्यावासी उस समय तक मूल्य पर विश्वास करते थे। पर एक अच्छी बात थी कि मूल्य के सिद्धान्त में जो कमी मानी जाती थी, वह उनमें नहीं थी। ग्राहक यह चाहता है कि कम मूल्य में अधिक वस्तु मिले। लेकिन अयोध्यावासियों में यह वृत्ति नहीं थी। जब उन्होंने कन्द-मूल-फल देखा, तो अपनी बुद्धि से उन्होंने गणित किया कि यह कितने का होगा? और गणित करने के बाद उनको लगा कि ये बेचारे इतने दरिद्र हैं, अभावग्रस्त हैं, इसलिए हम इनको इतना मूल्य चुकावें, जिससे इनको वस्तु का कई गुना मूल्य मिले। गोस्वामीजी ने लिखा –

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं।

बड़ा अनोखा दृश्य था। मूल्य दे रहे हैं, पर वे ले नहीं रहे हैं। अयोध्यावासी आश्चर्य से पूछते हैं, वस्तु बिना मूल्य के मिलती है क्या? वनवासियों ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया– आप लोगों ने भगवान को साधना का मूल्य चुकाकर पाया होगा, इसीलिए ऐसा लगता है कि जो वस्तु दिखाई देती है, वह मूल्य से मिलती है। हमें तो जब राम ही बिना दाम के मिल गये, तो हम फल का दाम क्यों लेंगे। हमने न जप किया, न तप किया, न साधन किया, न सत्संग किया और भगवान राम ने आकर अपना लिया। तो महाराज, आप लोग जो जप-तप करके मूल्य चुकाने में समर्थ हैं, उन्हें भले ही मूल्य चुकाने पर विश्वास हो, पर हम कोई मूल्य नहीं लेंगे। तब अयोध्यापुरवासियों ने सोचा कि जरा बुद्धिमत्ता से मूल्य चुकावें। उन लोगों ने कहा – अगर आप फल का दाम नहीं लेंगे, तो हम फल नहीं लेंगे। अब इसके बाद तो मूल्य लेना ही पड़ेगा। पर गोस्वामीजी ने कहा –

देहि लोग बहु मोल न लेहीं।
फेरत राम दोहाई देहीं।। २/२४९/४

बोले, श्रीराम की शपथ है। उलाहना दे दिया कि श्रीराम को हमने फल दिया, तो उन्होंने बिना मूल्य के ले भी लिया और अपने आपको बिना मूल्य के दे भी दिया। आप लोग क्या इतने बड़े हो गये कि फल न लेंगे? आपको राम की शपथ है, जो आप लोगों ने फल का मूल्य दिया और फल न लिया ! वे लोग बाध्य हो गये। गोस्वामीजी ने कहा – बस, उसी दिन उन्होंने पाठ पढ़ लिया कि भइ, मूल्य और वस्तु का सिद्धान्त तो अधूरा है। रामराज्य का जो नागरिक बन चुका है, उसके अन्त:करण में मूल्य का कोई सिद्धान्त नहीं है।

व्यापक रूप में सारी क्रिया का मूल ही तो समाज में बिक रहा है। सारी क्रिया बेची जा रही है और सारी क्रिया का हम अधिक से अधिक दाम लगाने के लिए व्यग्र हैं, यही व्यग्रता सारे झगड़े की जड़ है, अनर्थ की जड़ है और यही आगे चलकर रामराज्य में बाधा बनी। कैकय नरेश ने एक वचन

शेष भाग पृष्ठ १४२ पर

न्यायार्थ परिवार, पार्टी का विरोध भी स्वीकार करें

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

एक इजराइली लघुकथा पढ़ रहा था। उसमें एक व्यक्ति की पत्नी अपनी नौकरानी पर झुठा आरोप लगाती है कि उसने उसके घर से एक कीमती बरतन चुरा लिया है। पति नौकरानी से बरतन की चोरी के बारे में पूछता है, तो वह मना कर देती है। पति को विश्वास हो जाता है कि नौकरानी ने बरतन नहीं चुराया, लेकिन पत्नी नहीं मानती। पत्नी कहती है कि मैं इसे न्यायालय में सजा दिलवाऊँगी। जब वह न्यायालय में जाने के लिये तैयार होने लगती है, तो पति भी उसके साथ जाने के लिए तैयार होने लगता है। पति को तैयार होता देख पत्नी कहती है कि तुम्हें मेरे साथ जाने की आवश्यकता नहीं है। मैं स्वयं निपट लूँगी। मुझे न्यायालय के विधि-विधान ज्ञात हैं। पति ने कहा, ''ठीक है, तुम न्यायालय के सभी नियमों को जानती हो, लेकिन हमारी गरीब नौकरानी नहीं जानती। मैं उसके साथ जा रहा हूँ। मेरे होते हुए उस पर अन्याय कैसे हो सकता है?'' वर्तमान राजनीतिक व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ये लघु कथा अत्यन्त प्रासंगिक लगती है।

इस प्रसंग का उद्देश्य पत्नियों को दोषी ठहराना नहीं है। यह मात्र कथा है। हमारे यहाँ वास्तव में अधिकांश पत्नियाँ ही अपने पतियों की गलत बातों का विरोध करती आई हैं। इस दृष्टि से माताओं की स्थिति थोड़ी भिन्न होती है। अधिकांश माताएँ अपने बेटों का गलत पक्ष लेने में पीछे नहीं रहतीं। कथा में एक पति अपनी गरीब नौकरानी को अन्याय से बचाने के लिये अपनी पत्नी की अपेक्षा अपनी नौकरानी का साथ देने का निर्णय करता है। प्रश्न उठता है कि क्या हम पति या पत्नी के रूप में किसी को अन्याय से बचाने के लिये अपने जीवनसाथी के विरुद्ध जा सकते हैं? क्या हम प्रत्येक परिस्थिति में सच्चाई के पक्ष में खड़े हो सकते हैं? कुछ लोग होंगे, लेकिन अधिकांश के लिए ऐसा सोचना भी संभव नहीं हो सकता। चाहे वे कितने भी गलत अथवा दोषी क्यों न हों, लेकिन हम प्राय: अपने जीवनसाथी, बच्चों, मित्रों अथवा परिचितों का साथ देते हैं। हम ऐसा क्यों करते हैं?

उनसे प्रेम के कारण? उन्हें विषम परिस्थितियों से बचाने के लिये? लेकिन क्या ऐसा करके हम वास्तव में उन्हें सहयोग देते हैं? उन्हें बचाते हैं? उनसे प्रेम करते हैं? हाँ, हम उन्हें बचाते हैं और उनका सहयोग करते हैं, लेकिन ऐसा करके प्रेम तो कदापि नहीं करते। उनके नैतिक अथवा चारित्रिक विकास में योगदान नहीं करते। किसी की गलत बात में उसका साथ देना प्रेम नहीं है। हाँ, कोई निहित स्वार्थ हो सकता है। हम किसी-न-किसी स्वार्थ के लिए ही ऐसा करते हैं। हमें ऐसा ही सिखाया गया होता है कि हम सभी परिस्थितियों में अपनों के पक्ष में बोलें।

आज के राजनीतिक परिदृश्य की बात करें, तो वहाँ ऐसा ही हो रहा है। पार्टी की गलत नीतियों अथवा कार्यों का विरोध तो दूर की बात, उनका अंध समर्थन किया जा रहा है। अपनी पार्टी की हर गलत-सही बात का समर्थन और दूसरों की सही बात का भी विरोध। क्या हममें इतनी नैतिकता भी नहीं बची कि दूसरों की सही बात को सही न कहें, तो कम-से-कम उसका विरोध तो न करें। सही के विरोध और गलत के पक्ष में झंडे तो न उठाएँ। राष्ट्रहित का ध्यान रखें।

क्या ऐसा हो सकता है कि हमारे अपनों की सारी बातें ही ठीक हों और दूसरों की सारी बातें ही गलत हों? हमारी अपनी पार्टी की सारी नीतियाँ सही हों और दूसरी पार्टियों की सारी नीतियाँ ही गलत हों? ऐसा नहीं हो सकता, लेकिन हम ऐसा ही मानते हैं। हर गलत-सही का समर्थन ही पार्टी के प्रति वास्तविक निष्ठा माना जाता है। हम पार्टी

की हर गलत-सही का समर्थन करेंगे तो पार्टी भी हमारे लिये कुछ करेगी।

अपनों की हर गलत-सही बात का समर्थन ही परस्पर प्रेम का द्योतक है। ऐसा नहीं करेंगे तो रिश्ते टूट जाएँगे। हम रिश्तों को बचाने के लिए ऐसा कर सकते हैं। गलत होने के बावजूद यदि हम अपने जीवनसाथी, बच्चों, मित्रों अथवा अन्य प्रियजनों के साथ होते हैं, तो मात्र इसलिए कि हमसे गलती हो जाने की स्थिति में वे भी हमारे पक्ष में बोलें व हमारी सहायता के लिए तत्पर रहें। हम प्राय: एक-दूसरे को ऐसा ही सहयोग देते हैं, लेकिन इसमें जिस चीज का सबसे अधिक नुकसान होता है, वह है सच्चाई और ईमानदारी।

वैसे भी जब हमारे परिवार के सदस्य, मित्र अथवा परिजन गलत मार्ग पर हों, तो उनका पक्ष लेना वास्तव में उनका अहित करना है। जब तक इसके दुष्प्रभावों का पता चलता, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है। हम गलत बात के लिये अपने परिवार-परिजनों से सम्बन्ध-विच्छेद कदापि न करें, लेकिन उन्हें वास्तविकता को समझा अवश्य सकते हैं। उन्हें किसी का अहित या किसी के साथ अन्याय करने के दुष्परिणामों के विषय में सचेत करके किसी का अहित अथवा किसी के साथ अन्याय न करने के लिये सहमत कर सकते हैं। मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा है – **न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दंड देना धर्म है।** यह उचित है, लेकिन हम अपने स्वजन-परिजन आदि को दंड तो नहीं दे सकते, अत: सत्याग्रह का मार्ग अपनाया जा सकता है। सत्याग्रह से, प्रेम से उन्हें सही मार्ग पर चलने के लिये विवश किया जा सकता है। इस स्थिति में यदि हम थोड़ा-सा भी सुधार कर लें, तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

एक बार मैं अपनी बहन से किसी बात पर नाराज हो गया। इसके कारण कई महीने तक उससे मिलने नहीं गया। इसी दौरान दीपावली भी आ गई। पत्नी ने पूछा – दीदी के यहाँ कब जाओगे? मैंने कहा कि मुझे वहाँ किसी भी स्थिति में नहीं जाना है। उन्होंने कहा – आपको जाना चाहिए। मैंने कहा – मुझे नहीं जाना। पत्नी ने 'आपको जाना चाहिए' के बदले कहा कि 'आपको जाना ही है और अवश्य जाना है।' मैं अपने हठ पकड़े रहा, तो वे भी अपने आग्रह पर दृढ़ रहीं। अगले दिन उन्होंने पूछा – ''आज शाम को जा रहे हो?'' मैंने कहा – नहीं। उसके अगले दिन उन्होंने खाना बंद कर दिया। सबको भोजन कराई, लेकिन स्वयं नहीं खायीं। इस उपवास और सत्याग्रह का परिणाम सुखद ही रहा। अगले दिन सब लोग बहन के घर जा पहुँचे। जब पत्नियाँ पतियों को साड़ियाँ खरीदने और आभूषण बनवाने के लिए विवश कर सकती हैं, तो उन्हें गलत दिशा में जाने से रोक कर सही मार्ग पर चलने के लिये भी विवश कर सकती हैं, कर सकती हैं नहीं, करती भी हैं। जो अनुचित हो उसका निरन्तर विरोध और जो उचित हो उसके लिए निरन्तर आग्रह अनुचित नहीं अनिवार्य है। इसके अभाव में समाज के किसी भी क्षेत्र में पूर्ण न्याय की स्थापना असम्भव है। ○○○

पृष्ठ ११२ का शेष भाग

जाया करता था और अपराह्न में उनकी कुछ प्रिय पुस्तकों को उन्हें पढ़कर सुनाता था। मुझे भी एक संत के सान्निध्य में कुछ ग्रन्थों को पढ़ने का लाभ मिला था। उनके देहान्त के बाद मैंने यह अभ्यास जारी रखते हुए श्रद्धेय स्वामी वेदान्तानन्द को कुछ पुस्तकें पढ़कर सुनाई। हमलोगों ने श्रीरामकृष्ण-वचनामृत से प्रारम्भ करके उसके बाद रामकृष्ण-पोथी, श्रीमद्भागवतम् और योगवाशिष्ठ का पाठ किया। इसके पूरा होने पर श्रद्धेय महाराज ने सुझाव दिया कि चूँकि योगवाशिष्ठ अद्वैत वेदान्त का ग्रंथ है, अत: हमलोग माण्डूक्य कारिका का पाठ कर सकते हैं। किन्तु दुर्भाग्यवश, इसके प्रारम्भ के तुरन्त बाद ही श्रद्धेय वेदान्तानन्दजी गम्भीर रूप से बीमार होकर चल बसे। उनका एक विशिष्ट गुण यह था कि वे चिन्ता या मानसिक अवसाद के बिना ही सभी कष्टों को सह लेते थे।

स्वामी धीरेशानन्द जी

जैसा कि पहले कहा गया है कि श्रद्धेय स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने मुझे श्रद्धेय स्वामी धीरेशानन्द जी से शास्त्र–अध्ययन करने की संस्तुति की थी। वे एक कठोर और कुशल कर्मठ थे। हमें प्रतिदिन पंचदशी के कुछ पढ़ाए गए श्लोकों को याद करके उनका अर्थ और टीका लिखनी पड़ती थी। पंचदशी और नैष्कर्म्य सिद्धि के बाद माण्डूक्य कारिका का अध्ययन हुआ और प्रथम अध्याय, आगम प्रकरण के पूरा होने पर श्रद्धेय महाराज ने रुककर हमें छह माह तक उसका 'मनन' करने को कहा, ताकि वह हमारे विचार का एक अंग बन सके। ○○○ **(समाप्त)**

प्रश्नोपनिषद् (२२)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

भाष्य – तत्र विभागः –

भाष्यार्थ – उस (प्राण) के विभाग इस प्रकार हैं –

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति।।३/५।।

पदच्छेद : पायु-उपस्थे अपानं चक्षुः-श्रोत्रे मुख-नासिकाभ्यां प्राणः स्वयम् प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः, एष हि एतत् हुतम् अन्नम् समम् नयति तस्मात् एताः सप्त-अर्चिषः भवन्ति ।।

अन्यवयार्थ – (उसने) **पायु-उपस्थे** गुदा तथा जननेन्द्रिय में **अपानम्** अपान को (स्थापित किया), **चक्षुःश्रोत्रे** नेत्र तथा श्रवणेन्द्रिय में (और) **मुख-नासिकाभ्यां** मुख तथा नासिका में **प्राणः** मुख्य प्राण ने **स्वयं** स्वयं को **प्रातिष्ठते** स्थापित किया, **मध्ये तु** मध्य अर्थात् नाभि में **समानः** समान वायु को (स्थापित किया)। **एष हि** यह (समान वायु ही) **एतत् हुतम्** खाए गये **अन्नम्** अन्न को **समम्** समान रूप से (पूरे शरीर में) **नयति** ले जाता है। **तस्मात्** इसी से **एताः** ये **सप्त-अर्चिषः** सात ज्योतियाँ **भवन्ति** उत्पन्न होती हैं ।।५।।

भावार्थ – (उसने) गुदा तथा जननेन्द्रिय में अपान को (स्थापित किया), नेत्र तथा श्रवणेन्द्रिय में (और) मुख तथा नासिका में (इन चार में) मुख्य प्राण ने स्वयं को स्थापित किया, मध्य अर्थात् नाभि में समान वायु को (स्थापित किया)। यह (समान वायु ही) खाए गये अन्न को समान रूप से (जठराग्नि के रूप में पूरे शरीर में) ले जाता है। इसी से ये सात ज्योतियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ – दो नाक, दो कान, दो नासिकाएँ तथा एक जिह्वा) उत्पन्न होती हैं ।।३/५।।

भाष्य – पायूपस्थे पायुः च उपस्थः च पायूपस्थं तस्मिन्, अपानम् आत्मभेदं मूत्र-पुरीष-आदि अपनयनं कुर्वन्-तिष्ठति संनिधत्ते।

भाष्यार्थ – पायु (गुदा) तथा उपस्थ (शिश्न) को मिलाकर बना पायूपस्थ, उस (प्राण) ने स्वयं को अपान के रूप में विभाजित किया और उन (पायु-उपस्थ) में स्थापित हो गया, जिसके द्वारा वह मूत्र-मल आदि का निकास करता हुआ निवास करता है।

भाष्य – तथा चक्षुःश्रोत्रे चक्षुः च श्रोत्रं च चक्षुःश्रोत्रं तस्मिन् चक्षुःश्रोत्रे, मुख-नासिकाभ्यां च मुखं च नासिका च ताभ्यां मुख-नासिकाभ्यां च निर्गच्छन् प्राणः स्वयं सम्राट्-स्थानीयः प्रातिष्ठते प्रतितिष्ठति।

भाष्यार्थ – इसी प्रकार चक्षु तथा श्रोत्र को मिलाकर चक्षुश्रोत्र (शब्द) बना, उसमें – और मुख तथा नासिका को मिलाकर मुखनासिका (शब्द) बना, इन (चक्षु, श्रोत्र, मुख तथा नासिका) के द्वारा निकलता हुआ 'प्राण स्वयं' – सम्राट् का स्थान लेकर स्थित रहता है।

भाष्य – मध्ये तु प्राण-अपानयोः स्थानयोः नाभ्यां समानः। अशितं पीतं च समं नयति इति समानः।

भाष्यार्थ – तथापि, 'समान'– प्राण तथा अपान के स्थानों के बीच नाभि में स्थित रहता है। खाये-पीये हुए पदार्थों को पचाकर आत्मसात् करने के कारण यह 'समान' कहलाता है।

भाष्य – एष हि यस्मात् यत् एतत् हुतं भुक्तं पीतं च आत्माग्नौ प्रक्षिप्तम् अन्नं समं नयति, तस्मात् अशित-पीत-इन्धनात् अग्नेः औदर्यात् हृदय-देशं प्राप्तात् एताः सप्त-संख्याका अर्चिषः दीप्तयः निर्गच्छन्ति अयः भवन्ति शीर्षण्यः।

शेष भाग पृष्ठ १२८ पर

श्रीरामकृष्ण देव जयन्ती विशेष

श्रीरामकृष्ण का मानवतावाद

स्वामी आत्मस्थानन्द

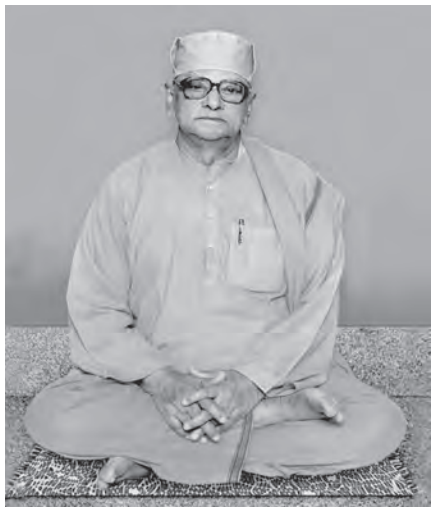

स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में बार-बार 'ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ईश्वर ही नित्य और सब अनित्य है, इस शाश्वत मन्त्र को ही दुहराया गया है। श्रीरामकृष्ण के जीवन में ईश्वरप्राप्ति के लिये तीव्र व्याकुलता, जीव और जगत की विस्मृति, देहाभिमान से रहित होना, ईश्वर दर्शन का परम आनन्द, विभिन्न मतों और पथों से ईश्वरप्राप्ति का रसास्वादन, सविकल्प और निर्विकल्प समाधि आदि बातें विशेषरूप से देखी जाती हैं। काशीपुर उद्यान में उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा था – ''तुम सभी को चैतन्य हो'' – भगवत्प्राप्ति ही मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। सामान्यत: भगवन्निष्ठ या ब्रह्मनिष्ठ परमपुरुष श्रीरामकृष्ण का अतीन्द्रिय और अलौकिक मानवत्व और श्रीरामकृष्ण का मानवतावाद; ये दो परस्पर विरोधी बातें प्रतीत होती हैं, किन्तु अभूतपूर्व ज्ञानालोक से उद्भासित 'भावमुखी' अवस्था में उनके जीवन की घटनायें इस बात की साक्षी हैं कि सहज समाधि में स्थित चिन्मय और भावमय (धृतसहजसमाधिं चिन्मयं कोमलांगम्) श्रीरामकृष्ण जीव और जगत के दुख से द्रवित होकर (प्रणयगलितचित्तं-जीवदु:खासहिष्णुम्) ज्ञान, भक्ति और शान्ति वितरित करने हेतु अवतार लेनेवाले (वितरितुमवतीर्ण ज्ञान-भक्तिप्रशान्ती:) दुख-समूह को दूर करनेवाले करुणा के सागर (भंजन दुख गंजन करुणाघन कर्म कठोर), जगत की रक्षा के लिये जीवन अर्पित करनेवाले (प्राणार्पण जगततारण), कलियुग के बन्ध को नष्ट करनेवाले (कृन्तन कलिडोर) थे।

दक्षिणेश्वर में बाबुओं की कोठी पर चढ़कर कातर हृदय से भावविह्वल होकर श्रीरामकृष्ण पुकारते हुए कहते थे – ''कहाँ हो रे ! तुम लोग आते क्यों नहीं?'' मातृगतप्राण भवतारिणी के पुजारी आज 'मानव' से मिलने के लिए आतुर हो रहे हैं। साधक जीवन का दिव्य उन्माद (भास्वर भावसागर चिर उन्मद प्रेम पाथार) आज भक्तों से मिलने के उन्माद में परिणत हो गया है। उनके युगल चरण भक्तों को भवसागर से पार करते हैं (भक्तार्जन युगल चरण तारण भवपार)।

श्रीरामकृष्ण के दिव्य-दर्शन और आध्यात्मिक अनुभूतियाँ भवतारिणी माँ काली को एक ही प्रकार से देखकर पूर्ण नहीं हुई थीं। उनकी अनुभूति में चित् शक्ति केवल माँ भवतारिणी के रूप में ही प्रकट नहीं हुई थीं, अपितु इस मायिक जगत में अन्तर्निहित चैतन्य सत्ता के रूप में प्रकाशित हुई थीं। उनकी आँखों के सामने दरवाजा, चौखट, वृक्ष, बिल्ली, मनुष्य सभी एक चैतन्य शक्ति के प्रकाश से उद्भासित हो उठे थे।

मनुष्य अब उनके लिये एक क्षुद्र जीव नहीं रहा, बल्कि उनके सामने जीव और शिव की अभिन्नता प्रस्फुटित हो गई। श्रीमन्दिर में विराजित भवतारिणी एवम् विविध स्तर के मनुष्यों में उन्हें एक ही प्रकाश दिखाई दिया तथा इस चरम अनुभूति के आलोक में मनुष्य, देवता, वस्तु, व्यक्ति, नदी, नाले में कोई भी भेद नहीं रहा। श्रीरामकृष्ण की अनुभूतियों ने उन्हें इस द्वन्द्वात्मक जगत से सर्वथा ऊपर उठाकर एक दिव्य चैतन्य के राज्य में पहुँचा दिया। श्रीरामकृष्ण को 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्' की प्रत्यक्ष अनुभूति हो गई, जिससे उनके लिए मन्दिर की माँ, नहबत में रहनेवाली उनकी माँ और उनका पैर दबानेवाली माँ सारदा में कोई भेद नहीं रहा। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से देखा कि माँ भवतारिणी ही कहीं पतिता नारी के रूप में, तो कहीं मोहिनी रूप में तथा और भी बहुत से रूपों में प्रकाशित हो रही हैं। इसीलिए तो उन्होंने कहा था, 'प्रतिमा में यदि उनका आविर्भाव हो सकता है, तो मनुष्य में फिर क्यों नहीं हो सकता? ... वे तो सभी प्राणियों में हैं, फिर भी मनुष्य में उनका प्रकाश अधिक है।'

अवतारी जीवन का उद्देश्य स्वयं की उपलब्धि तक सीमित नहीं होता। अवतार जीवन की गंगा तो स्वयं की साधना और सिद्धि से सम्पन्न होकर लोक-कल्याण के निमित्त मानव को प्रेरित करने के लिये सहस्र धाराओं में फूट पड़ती है। इसीलिए जो भवतारिणी के दर्शन के लिये व्याकुल हो गये थे, वे ही अपने आविर्भाव के उद्देश्य को सार्थक करने हेतु दक्षिणेश्वर के छोटे-से कमरे के ऊपर से लोकसंग्रह के उद्देश्य से उच्चस्वर में पुकार उठे थे – ''प्रतिमापूजा हो

सकती है, तो क्या जीवन्त मानव में उनकी पूजा नहीं की जा सकती? वे ही मनुष्य के रूप में लीला कर रहे हैं।'' ''और दान, ध्यान, दया कितनी ! अपनी लड़की के विवाह में हजारों रुपये खर्च करेंगे और पड़ोसी के घर में भोजन भी होता है कि नहीं, उसके लिए दो मुट्ठी चावल भी बड़ी मुश्किल से निकलेगा। लोगों को भरपेट भोजन भी मिलता है कि नहीं, उसका क्या होगा, वह साला मरे या बचे, मैं और मेरे घर के लोगों का काम हो जाये, बस इतना ही और कुछ नहीं। इधर मुँह से कहते हैं – सभी जीवों पर दया।''

हृदयकमलमध्ये राजितं निर्विकल्पं,
सदसदखिलभेदातीतमेकस्वरूपम्।
प्रकृतिविकृतिशून्यं नित्यमानन्दमूर्तिम्।...

– हृदय कमल में निर्विकल्प रूप स्थित तथा सत्-असत् सभी भेदों से अतीत, प्रकृति और उसके विकारों से रहित अद्वय और नित्य आनन्दमय ही जिनका स्वरूप है, ऐसे देव-मानव का यह क्या ही अपूर्व मानव प्रेम है ! यह अभिनव मानवतावाद दिव्यभाव से परिपूर्ण यथार्थ को स्वीकार करनेवाला किन्तु शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि के आधार पर। प्रेममय देव-मानव श्रीरामकृष्ण ने जीव-ज्ञान से दया द्वारा नहीं, अपितु शिवज्ञान से पूजा द्वारा मानव को देवत्व में परिणत कर दिया है। यह एक नवीन दृष्टि, नवीन ज्ञान, नवीन अनुभूति और नवीन धर्म है, जिसके आलोक में सभी मनुष्य दिव्य हैं और उनकी सेवा से मनुष्य सभी बन्धनों से मुक्त अनन्त आनन्द का अधिकारी, अनन्त ऐश्वर्य, महिमा और साम्राज्य का सम्राट हो गया है। इसीलिए हम देखते हैं कि श्रीरामकृष्णावतार में वेदान्त व्यावहारिक हो गया है। श्रीरामकृष्ण उस वेदान्त को धिक्कारते और तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे, जो वेदान्त साधक को उदार नहीं बनाता, जो वेदान्त-ज्ञान मनुष्य के मन और उसकी इच्छा शक्ति को जन्तु-सुख, संयोगजन्य सुख से ऊपर नहीं उठाता, जो वेदान्त-ज्ञान जीवन को क्षुद्र स्वार्थ की सीमा से बाहर निकालकर परदुखकातर नहीं बनाता, मानवमात्र के कल्याण की ओर उन्मुख नहीं करता। पूर्णमानवता के विकास के प्रमाण-स्वरूप उनके उदाहरण हम उन्हीं के जीवन में देखते हैं। जैसे निम्न जाति की महिला धनी नामक लुहारिन को अपनी भिक्षामाता के रूप में स्वीकार करना, अक्षय की मृत्यु के कारण जैसे कपड़ा निचोड़ते हैं, उसी प्रकार की हार्दिक वेदना का अनुभव करना, स्नेहमयी माता चन्द्रादेवी का ध्यान आते ही वृन्दावन में रहने की इच्छा का त्याग करना, सहधर्मिणी श्रीसारदादेवी के लिए आभूषण बनवाना और उनको यथायोग्य शिक्षा देना, केशव सेन की असाध्य बीमारी की अवस्था में माँ काली को चीनी और नारियल की मनौती मानना, बालकवत सरलता और माँ के ऊपर निर्भरशील होना, हाथ में चोट लग जाने पर उसकी पीड़ा से अत्यन्त साधारण व्यक्ति की तरह व्यवहार करना, लोक व्यवहार में हास्य विनोद करना, नरेन्द्रादि बालकों के कल्याण के लिये सदा सजग रहना, कलकत्तावासियों के अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिये रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर मन्दिर के प्रशान्त परिवेश को छोड़कर महानगरी की गलियों में बार-बार आना-जाना, अरण्य के वेदान्त को घर-घर भेजने के लिये अधीर होना, गाड़ी से उतरने में लड़खड़ाते हुए मद्यप गिरीश घोष को सान्त्वना देना, अभिनेता-अभिनेत्रियों के प्रति भी विशुद्ध प्रेम करना, तीर्थ यात्रा में दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता को प्रमुखता देना, कलाईघाट के दीन दुखियों की परेशानियों को दूर करने के लिए तत्पर होना, मानवमात्र के एकत्वबोध से कंगालियों की जूठन को साफ करना, मेहतर के शौचालय को अपने हाथों से तथा केशों से साफ करना, मथुरबाबू के अनुरोध से उनकी पत्नी जगदम्बा दासी के रोग को अपने ऊपर भोगना, माझियों के परस्पर कलह से स्वयं की देह पर आघात का अनुभव करना, श्वेत कुष्ठ को दूर कर आरोग्य प्रदान करने के लिए भीषण ज्वाला का अनुभव करना, गले की घोर यंत्रणा में भी आर्त और जिज्ञासुओं की सेवा में सर्वदा उद्यत रहना और सर्वोपरि 'लाखों कष्ट उठाकर भी यदि उनका मंगल हो सके, कल्याण हो सके, तो उसे करूँगा' ऐसा उद्‌गार प्रकट करना आदि आदि। इस कथन से पता चलता है कि इस प्रकार का दयालु, हितचिन्तक मानव-मित्र और कौन हो सकता है !

श्रीरामकृष्ण ने अपने स्वयं के जीवन में इसे वास्तविक कर दिखाया है कि प्रत्येक मनुष्य के आत्मा का ही वास होने के कारण उनमें परस्पर आत्मीयभाव विद्यमान है। परमात्मा दूर आसमान में स्थित कोई अनोखी वस्तु नहीं, अपितु परमात्मा मनुष्य के परम आत्मीय हैं। मनुष्य और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। इसीलिये श्रीरामकृष्ण की मानवता एक प्रकार से मनुष्य की अन्तर्निहित चैतन्यशक्ति की स्वीकृति है।

निर्वासनोऽपि सततं परमंगलार्थी
निष्कर्मकोऽपि सततं परकर्मकर्ता।
निर्दुःखलेशमपि तं सततं परेषां
दुखेषु कातरमहो भज रामकृष्णम्।। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७५)

स्वामी भूतेशानन्द

– शरणार्थियों को भोजन-बनाकर दिया जाता था या सूखा (कच्चा अन्न)।

महाराज – कैन्टीन से भोजन दिया जाता था। वे लोग कैन्टिन में जाते थे। हम लोग टिकेट देते थे। टिकेट दिखाकर खाते थे। दाल-भात खाने को दिया जाता था, सब्जी कुछ नहीं थी। वे लोग टिकेट वहाँ देते थे और कैन्टीन वाले टिकटों को हमलोगों के पास लाते थे। हमलोग परीक्षण करके रुपया देने के लिए भेज देते थे।

– क्या कैन्टीन आप लोग चलाते थे या मिलिट्रीवाले चलाते थे ?

महाराज – नहीं, हमलोग ही चलाते थे। सरकार रुपया देती थी।

– दिन में कितनी बार भोजन दिया जाता था?

महाराज – एक बार। वे सब आये। भोजन कराया गया। उसके बाद टिकेट दे दिया। ट्रेन से चले गये। एक 'विशेष' ट्रेन थी, बहुत कष्ट था।

– बड़ा अच्छा राहत-कार्य हुआ था महाराज। हमलोग ये सब घटनाएँ नहीं जानते थे।

महाराज – हाँ। अच्छा राहत-कार्य हुआ था। बड़ी कष्टकर अवस्था थी। पहली बार जब मैं गया, तो कहाँ रहूँगा, कहाँ खाऊँगा, कुछ भी ठीक नहीं था।

– महाराज ! वहाँ बिजली थी क्या?

महाराज – नहीं, नहीं। हमलोगों के पास कुछ लालटेने थीं। उसके बाद जब अन्धकार में आते समय कुछ लोग कीचड़ में गिर गये, कुछ लोग मर गये, तब हम लोग कुछ पेट्रोमेक्स खरीदकर लाये। किन्तु मिलिट्री कमानडेन्ट ने एक दिन कहा ''इतना प्रकाश जलाकर आप लोग जापानियों को निमन्त्रण दे रहे हैं। मैंने कहा – बतायें, क्या करें? रोगी मरे जा रहे हैं। यह सुनकर उन्होंने कुछ नहीं कहा। उस समय तो ब्लैक आउट चल रहा था। फिर भी चारों ओर प्रकाश जला दिया।

– सरकार ने आप लोगों को कोई आदमी दिया था?

महाराज – आदमी-जन कुछ नहीं। केवल उनके कैम्प कमान्डेन्ट साहेब थे।

– शिविर में जो लोग मर जाते थे, उनलोगों का क्या करते थे?

महाराज – वह बड़ा मार्मिक था। गड्ढा खोदकर सबको एक साथ उसमें कब्र दे देते थे। इस परिस्थिति में इससे अधिक कुछ करना सम्भव भी नहीं था।

– ये सब क्या हमारे साधु लोग ही करते थे?

महाराज – नहीं, सरकारी डोम सब करते थे। एक दिन एक शरणार्थी आयी। बंगाली लड़की थी। उसका पति मर गया था। वह हमारा पैर जकड़कर रोने लगी – ''महाराज! मेरे पति के मृत-शरीर को कब्र न देकर दाह संस्कार करा दीजिए।'' मैंने कहा – ठीक है, प्रयास करूँगा। हमारे मुख्य चिकित्सा अधिकारी एक साहब थे। उनसे मेरा पहले से शिलांग से ही परिचय था। उनको कहा – ''देखिए, इस व्यक्ति के दाह-संस्कार की हमलोग व्यवस्था करेंगे। आपको जलाने की अनुमति देनी होगी।'' उन्होंने कहा – ''बहुत कठिन है।'' उसके बाद उन्होंने सोच-समझकर कहा – ''आपको अनुमति देंगे, किन्तु विशेष रूप से। आपको देखना होगा कि शव को पूर्ण रूप से जला दिया जाय। आधा जलाने से काम नहीं होगा।'' मैंने कहा – ''उसे मैं देख लूँगा। उसके बाद डोम के द्वारा जलाने की व्यवस्था किया। जंगल में तो लकड़ी की कमी नहीं है। वह कैसा करुण दृश्य था! उस समय तक भी उसके माता-पिता नहीं आये थे। जो व्यक्ति मरा था, उसकी पत्नी और वह पहले शिविर में आए थे। यहीं मलेरिया से वह मरा। उसके बाद दूसरे दिन उसके माता-पिता आये। मैं सोच रहा था – कैसे उन सबका सामना करूँगा। ओ माँ ! देखता हूँ, जैसे उन सबको कुछ हुआ ही नहीं ! अर्थात् इतना कष्ट हुआ है कि उन सबका मन पत्थर का हो गया है। मनुष्य का जो दुख-कष्ट देखा हूँ, उससे कई दिन मुझे लगा कि पागल हो जाऊँगा। कितनी दुर्गन्ध थी ! जहाँ भी जा रहा हूँ, पूरे शरीर से दुर्गन्ध आ रही है ! ऐसी स्थिति थी। उसके बाद कीचड़ के रास्ते से रोगियों को लाना होगा, क्योंकि चल नहीं पा रहा है, पकड़-पकड़कर शिविर में लाकर बैठाना पड़ता था।

– महाराज ! अपने रामकृष्ण मिशन के राहत-कार्य की बात हो रही थी। कुछ और घटनाएँ भी सुनने की इच्छा है।

महाराज – ठीक है। हम लोगों ने राहत-कार्य किया और तुमलोग केवल कहानी सुनोगे। तो सुनो – उस समय की एक घटना है। बर्मा से शरणार्थी आ रहे हैं। एक परिवार है, वे बड़े लोग हैं, हमलोगों के सेवाश्रम के प्रेसीडेन्ट थे। सम्पत्ति छोड़कर चले आने की उनलोगों की इच्छा नहीं थी, क्योंकि सारी सम्पत्ति उनकी वहीं थीं, यहाँ कुछ नहीं था। बर्मा का गवर्नर उनलोगों को बुलाकर कहा था – 'यदि तुमलोग यहाँ से नहीं जाओगे, तो तुमलोगों की सुरक्षा का दायित्व हमलोगों का नहीं रहेगा।'' यानि परोक्ष रूप से कहा गया, तुमलोग चले जाओ। बड़े लोगों को रखने की इच्छा नहीं थी। ये सब सुनकर अन्त में उनलोगों ने निर्णय लिया कि यहाँ से छोड़कर चले जायेंगे। उनलोगों की बहुत सम्पत्ति थी। ट्रक में सामान भरकर उनलोगों ने प्रस्थान किया। आते-आते रास्ते में देखा कि एक पुल टूटा हुआ है। तब ट्रक वहीं पड़ा रहा। वहाँ से पैदल चलने लगे। इस प्रकार पैदल चलने की उनलोगों की आदत नहीं थी। मार्ग में उन सज्जन को कलरा हुआ और उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी पत्नी एक बच्चा लेकर चलती रही। क्या करेगी बेचारी ! तत्पश्चात् जब हमलोगों के पास पहुँची, तब उसकी दशा देखकर हमलोगों की आँखों से आँसू आ गये। इतने बड़े घर की है, लेकिन रास्ते के भिखारी के समान आ रही है। तब हमलोगों ने कुछ कुर्ते बच्चों को दिये। तब वे आपस में बात कर रहे हैं – देखो, जाड़े में अब कष्ट नहीं होगा। लोग पूछ रहे हैं – ''महाराज इतने लोग मर रहे हैं, क्या इसे रोका नहीं जा सकता?'' हमलोगों के पास उत्तर देने योग्य कोई बात नहीं थी। क्या कहूँगा? यही तो बड़े लोगों की बात है, तब गरीब लोगों की बात तो समझते ही हो। पेट में अन्न नहीं है। शरीर पर वस्त्र नहीं है, पॉकेट में पैसे नहीं है। मार्ग में पानी भी नहीं था। जो जल के स्रोत थे, उन्हें सेना के जवान देख रहे थे। क्योंकि पानी में विष होने से सभी मर जायेंगे। कॉलरा से महामारी हुई थी। मार्ग के आसपास के गाँवों में जाकर कहते थे – पानी दो। वे लोग कहते थे – रुपया दो। जिनके पॉकेट में रुपये थे, वे लोग एक ग्लास पानी का मूल्य पाँच-दस रूपये देकर पानी पीते थे। जिनके पास नहीं था, वे बिना पानी पिये मर गये। इस प्रकार लोग इम्फाल पहुँचते थे। गाँव के बीच से दो रास्ता बनाया गया था – ब्लैक रोड और ह्वाइट रोड। साहेबों के लिए ह्वाइट रोड और अन्य लोगों के लिए ब्लैक रोड। साहेबों के ह्वाइट रोड में खाने-पीने, औषधि आदि की व्यवस्था थी। ब्लैक रोड में कुछ भी नहीं था। ऐसी परिस्थिति में वे लोग आकर यहाँ पहुँचे थे। हमलोगों के पुण्यानन्द स्वामी ह्वाइट रोड से आये थे। सभी लोग उनका सम्मान करते थे, उनका बहुत प्रभाव था।

शरणार्थी लोग शिविर में आकर कहते थे – ''बड़ी प्यास लगी है, पानी पीऊँगा। कितना पैसा देना होगा? हमलोग कहते थे – पैसा नहीं देना पड़ेगा। वे लोग कहते – 'हमलोगों ने तो रास्ते में कहीं ऐसा पाया नहीं।'' रास्ते में कॉलरा, मलेरिया से बहुत-से लोग मरे हैं। लोगों को ट्रक से लाकर उतार देते थे। वे लोग कैन्टीन में भोजन करते, हमलोग ट्रेन से भेज देते थे। हमलोग टिकट कटा देते थे, वे लोग ट्रेन से जाते थे। इसी प्रकार चलता था। लोग बिल्कुल असहाय थे। पेट में भोजन नहीं, शरीर पर वस्त्र नहीं है। हमलोग यथासम्भव वस्त्र देते, भोजन देते। उसके बाद सामान भरने जैसा ट्रेन में बैठाकर भेज देते थे। कहाँ जाओगे, पूछने पर वे लोग कहते – ''पता नहीं।'' वे लोग कभी इस देश में नहीं रहे। इसलिए कहाँ जायेंगे, वे नहीं जानते थे। हमलोग देखते थे कि जन्म-स्थान कहाँ है। यदि देखते की पंजाब, तो वहाँ के किसी शहर का टिकट कर देते थे।

अभी भी मुझे याद है – एक छोटा बच्चा था। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उसने आकर कहा – ''मैं अपनी माँ को नहीं खोज पा रहा हूँ। यदि तुम लोग मुझे यहाँ रहने दो, तो मैं माँ को खोज सकूँ।'' मैंने कहा – रहो। किन्तु वह अपनी माँ को नहीं पा सका। दो-तीन दिन बाद चला गया। ऐसी परिस्थिति थी। अपने प्रधान कामानडेन्ट को बताया – यदि हमलोगों को इम्फाल में एक शिविर करने दिया जाय, तो हम परिवारवालों को एक साथ भेज सकते हैं। क्योंकि परिवार अलग हो जा रहा है। उन्होंने कहा कठिन काम है। वे कुछ कह नहीं सके। इतने लोग आ रहे हैं। उन लोगों के लिए गड्ढा खोदकर शौचालय की व्यवस्था की गयी थी। दो सौ सफाइकर्मी। मेहतर सब शौचालय साफ करते थे। उसके बाद प्रश्न उठा कि उनलोगों को भोजन कौन देगा? उन सबों ने एक दिन कहा – हमलोग जा रहे हैं। मैंने कहा – सर्वनाश! मैं तुमलोगों के भोजन की व्यवस्था करूँगा। उन सबके खाने की व्यवस्था किया था। उसके बाद वहाँ रहते-रहते ही मुझे ज्वर हो गया। मैं गोहाटी में आकर कुछ दिन रहा। तब देखा – सफाईकर्मियों का वह दल वहाँ से चला आया

है। उन सबने हमें बताया, ''महाराज हमलोग चले आये हैं। वहाँ बम गिर रहा है।'' इसीलिए वे सब चले आये थे। अब क्या करूँ? तब मैं ज्वरग्रस्त शरीर लिए ही वहाँ चला गया। कुछ लोगों की व्यवस्था किया, जो शव-दाह का काम जानते थे। किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। उसके बाद वर्षा आ गयी। अत्यधिक वर्षा से सर्वत्र कीचड़ हो गया। बम गिरने पर बचने के लिए हमलोग बड़े-बड़े गड्ढे खोदकर रह रहे थे। सभी गड्ढे पानी से भर गये। केम्प-कमानडेन्ट ने उसे देखकर कहा – ''क्या आपलोगों ने स्वीमिंग पुल खोदा है।'' मैंने कहा क्या करूँ! उस समय तो बरसात नहीं थी, इसलिए गड्ढा खोदा गया था। उसी गड्ढे में जल जमकर कीचड़ हो गया है। इसका कोई उपाय भी सम्भव नहीं था। लोग आ रहे हैं, चल नहीं पा रहे हैं। कीचड़ में गिर जा रहे हैं और गिरकर मर जा रहे हैं। जितने लोगों का सम्भव हो सकता था, हमलोग उनका हाथ पकड़कर शिविर में लाते थे। शिविर में सूखा था। जो बहुत बीमार थे, उन लोगों को हमलोग औषधि देते थे। किन्तु कठिनाई यह थी, देख-भाल करने के लिए सरकारी प्रशासन का कोई नहीं था। सब जगह मिलिट्री भरी हुई थी। हमलोगों को देखकर वे सब कहते थे – ''आप लोग जापानी है?'' तब मैं कहता – जपानी होने से क्या आपलोग यहाँ रहने देते? जो हो, इसी प्रकार कितने लोग मर गये। एक दिन ट्रक से १२०० लोग आये, उनमें से ९०० लोग मर गये। वास्तव में वे लोग मरणासन्न होकर ही आये थे। यह सब देख-सुनकर लगता था, पागल हो जाऊँगा। सहन नहीं होता था। सारा दिन शिविर का काम करके सन्ध्या के बाद अपने क्वार्टर में जाकर बैठता था। चारों ओर निस्तब्धता रहती थी। बीच-बीच में कहीं से रोने की आवाज जा रही है। क्या कहूँ ! अभी भी याद आने पर शरीर सिहर जाता है। उसके साथ वही कीचड़ था। कितनी दुर्गन्ध थी ! इतनी दुर्गन्ध थी कि व्यक्ति दूर से भी उसे सहन नहीं कर सकता। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १०६ का शेष भाग

अर्थात् कर्पूर के समान गौर वर्णवाले, करुणा के साक्षात् अवतार हैं, समस्त सृष्टि के सार हैं, सर्प को हार के रूप में धारण किए हुए हैं, जो शिव पार्वती के संग सदैव हृदय में निवास करते हैं, उन्हें मेरा नमन है। भगवान शिव की ईशान, तत्पुरुष, वामदेव, अघोर, सद्योजात पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ और शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव अष्ट मूर्तियाँ हैं।

सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, ओंकारेश्वर, केदारेश्वर, भीमशंकर, विश्वेश्वर, त्र्यबंक, बैद्यनाथ, नागेश रामेश्वर एवं घुश्मेश्वर **बारह ज्योतिर्लिंग** हैं।

वायु पुराण के अनुसार प्रलयकाल में समस्त सृष्टि जिसमें लीन हो जाती है और पुनः सृष्टिकाल में प्रकट होती है, उसे लिंग कहा गया है। यह सम्पूर्ण सृष्टि बिन्दु-नादस्वरूप है। बिन्दु शक्ति है और नाद शिव। बिन्दु अर्थात् ऊर्जा, नाद अर्थात् ध्वनि, यही दो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है। प्रतीक रूप में भारतीय धर्म में शिवलिंग की पूजा-अर्चना का विधान है। ऐसे भगवान शिव सम्पूर्ण संसार का कल्याण करें, सबका मंगल करें, यही उनके चरणों में प्रार्थना है –

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय
भस्मांगरागाय महेश्वराय।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय
तस्मै नकाराय नमः शिवाय।।
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय
नन्दीश्वराय प्रमथनाथाय महेश्वराय।
मंदारपुष्प बहुपुष्प सुपूजिताय
तस्मै मकाराय नमः शिवाय।। ○○○

पृष्ठ १२३ का शेष भाग

भाष्यार्थ – चूँकि यह अपने शरीर रूपी अग्नि में हवन किये गये खाद्य-पेय को पचाकर, सम भाग से (सभी अंगों में) पहुँचाता है, अतः उस खाये-पीये गए ईंधन से पेट में उठकर हृदय-प्रान्त में पहुँचनेवाली जठराग्नि के शीर्ष से सात ज्योतियाँ निकलती हैं और मस्तक में स्थित हो जाती हैं।

भाष्य – प्राण द्वारा दर्शन-श्रवण-आदि-लक्षण-रूपादि-विषय-प्रकाशा इति अभिप्रायः।।

भाष्यार्थ – तात्पर्य यह कि प्राण के तेज से ही दर्शन-श्रवण आदि के रूप में आकृति-रंग आदि विषयों का प्राकट्य होता है।। (३/५) **(क्रमशः)**

क्रान्तिकारी-चिन्तन की देवियाँ

अरुण चूड़ीवाल, कोलकाता

स्वतन्त्रता के अमृत महोत्सव वर्ष अर्वाचीन पथ-प्रदर्शिका देवियाँ नमनीय हैं, उनमें से कुछ का प्रेरक जीवन प्रस्तुत है –

हीरा दे

आज से ७१० वर्ष पूर्व क्रान्तिकारी क्षत्राणी हुयी थीं हीरा दे। राजस्थान के जालौर के महत्त्वपूर्ण दुर्ग के गुप्त द्वार की सूचना दहिया नामक सैनिक ने अलाउद्दीन खिलजी को देखकर गद्दारी की थी। गद्दारी के पुरस्कार में दहिया को अपार धन राशि प्राप्त हुयी। प्रसन्न दहिया धनराशि लेकर घर पहुँचा, तो उसकी पत्नी हीरा दे को समझते देर नहीं लगी कि यह समस्त राशि देश-द्रोह के लिए पुरस्कार है।

हीरा दे को अपने सुहाग एवं देशद्रोही के बीच में दुष्कर निर्णय लेना था एवं उन्होंने निर्णय लिया – ''देश के प्रति अपराध के लिए उसकी हत्या कर देनी चाहिए। गद्दारों के लिए यही एकमात्र सजा है।''

निर्णय लेने के पश्चात् हीरा दे ने पास ही रखी तलवार उठा अपने गद्दार और उस देशद्रोही पति का एक झटके में सिर काट डाला।

नंगी तलवार एवं पति का कटा मस्तक लेकर हीरा दे ने राजा कान्हड़ देव को स्वयं जाकर सूचना दी – गद्दार द्वारपाल को दंड दे दिया है। यह राष्ट्रभक्ति की सती-परीक्षा।

रानी अवन्तीबाई

रानी अवन्तीबाई रामगढ़ (मध्य प्रदेश) की रानी थीं। उनके पति विक्रमादित्य सिंह को अंग्रेजों ने पागल घोषित कर दिया था। रानी के पति की मृत्यु के पश्चात् अंग्रेजों ने उनके पुत्र अमानसिंह और शेर सिंह को नाबालिग होने के कारण गद्दी का उत्तराधिकारी नहीं माना और रियासत को 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स' घोषित करके वहाँ अपना प्रशासक नियुक्त कर दिया। रानी ने उस प्रशासक को निकाल बाहर किया और अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

रामगढ़ की रानी अवन्तीबाई के हरकारे उनका संदेश लेकर आसपास के राज्यों में पहुँच गए। इन नरेशों को भेजे गए पत्रों के साथ रानी ने कुछ चूड़ियाँ भी भेजी थीं। पत्रों की भाषा थी –

'यदि बंदिनी भारत माता के प्रति आप अपना कुछ कर्तव्य समझते हैं, तो अंग्रेजों के विरुद्ध तलवार उठाकर युद्ध में कूद पड़िए, अन्यथा ये चूड़ियाँ पहनकर अपने घरों में छिपे रहिए।'

रानी अवन्तीबाई के आह्वान पर मध्य प्रान्त में क्रान्ति की लहर दौड़ गई।

रानी अवन्तीबाई ने व्यूह रचना के रूप में अपनी सेना के साथ मंडला के अन्तर्गत खैरी नामक ग्राम के पास अपना मोर्चा जमाया। उनका विचार मंडला पर आक्रमण करने का था। मंडला पर रानी के आक्रमण के पूर्व ही अंग्रेज सेनापति वाडिंगटन रानी के साथ युद्ध करने जा पहुँचा।

अंग्रेजी सेना के साथ रानी का यह प्रथम युद्ध था। रानी की तलवार बिजली की तरह चमककर शत्रु सेना का संहार कर रही थी। सेनापति वाडिंगटन ने घोड़े पर सवार होकर रानी अवन्तीबाई को घेरा। रानी भी घोड़े पर सवार थीं। उन्होंने अपनी तलवार का एक भरपूर हाथ वाडिंगटन के ऊपर दे मारा। जिस समय रानी ने अंग्रेज सेनापति पर अपना हाथ छोड़ा, उसी समय रानी का घोड़ा एक कदम आगे बढ़ गया। परिणाम यह हुआ कि रानी की तलवार वाडिंगटन के घोड़े की गरदन पर पड़ी। रानी का वार इतना जोरदार था कि वाडिंगटन के घोड़े की गरदन कटकर जमीन पर जा गिरी।

अपने घोड़े की कटी हुई गरदन देखकर सेनापति वाडिंगटन नीचे कूद पड़ा और रानी को पीठ दिखाकर अपने सैनिकों की भीड़ में खो गया। रानी की तलवार ने कई सैनिकों को मौत की नींद सुला दिया।

वाडिंगटन को अपनी पराजय बुरी तरह कसक रही थी। उसने पुन: रानी अवन्तीबाई को उनकी राजधानी रामगढ़ में ही जा घेरा। रानी अवन्तीबाई ने छापामार युद्ध का सहारा लेकर वाडिंगटन के सैन्य शिविर पर कई आक्रमण करके उसकी सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया।

शत्रु सेना ने देवहारगढ़ की पहाड़ी पर रानी को घेर लिया। रानी भी अपनी तलवार को बिजली की भाँति चमकाकर शत्रु सैनिकों को काट-काटकर बिछाती रहीं। उनके सैनिकों की संख्या बहुत कम रह गई थी। उनके साथ उनका एक विश्वासपात्र साथी उमरावसिंह था। रानी ने उससे कहा – 'भैया उमराव, मुझे लगता है कि शत्रु सेना मुझे जीवित पकड़ना चाहती है। मुझे यही उचित प्रतीत होता है कि शत्रु के अपवित्र हाथों में पड़ने के बजाय मैं ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर लूँ।''

उमरावसिंह का कथन था – ''रानी बहन, पहले अपने भाई को तलवार के जौहर दिखा लेने दीजिए। मेरे पश्चात् आप जो उचित समझें, करें।''

शत्रु सेना को काटते-काटते वह काफी आगे बढ़ चुका था और दूसरी ओर रानी अकेली रह गई थीं। जब रानी ने यह समझ लिया कि वह शत्रु के हाथों पड़ने ही वाली हैं, तो वह घोड़े से नीचे कूद पड़ीं और अपनी तलवार अपने पेट में घुसेड़ ली तथा मूर्च्छित होकर पड़ी रहीं। रानी को गिरा हुआ देखकर वाडिंगटन ने युद्ध बंद करने की घोषणा कर दी। रानी के पास पहुँचकर वह उन्हें होश में लाने का प्रयत्न करने लगा। कुछ देर के लिए जब रानी को होश आया, तो वाडिंगटन ने उन्हें सलाम करते हुए उनके सहायकों के नाम पूछे। रानी ने इतना ही कहा – ''इस युद्ध के लिए मैं अकेली ही जिम्मेदार हूँ।''

इसके पश्चात उन्होंने 'हरिओम्' का नाद किया और अपनी आँखें हमेशा के लिए बंद कर लीं। २० मार्च, १८५८ को एक वीरांगना अपने देश की आजादी के लिए अपना बलिदान दे गई।

लज्जावती

सन् १९१५ में क्रान्तिकारी भाई बालमुकुंद की सहधर्मिणी लज्जावती ने भी अद्‌भुत बलिदान दिया। भाई बालमुकुंद जोधपुर महाराज के राजकुमारों के शिक्षक थे। उनके पूर्वज भाई मतिराम को औरंगजेब ने आरे से चीरकर मरवा दिया था। अत: देशभक्ति भाई बालमुकुंद को विरासत में प्राप्त हुई थी।

वायसरॉय लॉर्ड हार्डिंग जोधपुर में था एवं जोधपुर महाराज ने उसके लिए सम्मान समारोह आयोजित किया था। भाई बालमुकुंद ने लार्ड की हत्या का विचार किया, पर वे सफल नहीं हुए। षड्यंत्र के आरोप में पुलिस ने भाई बालमुकुंद को गिरफ्तार कर लिया। उनके निवास से दो बम एवं क्रांतिकारी साहित्य प्राप्त हुए। फलत: उन्हें फांसी की सजा सुना दी गयी।

कारावास में भाई बालमुकुंद की नवेली दुल्हन जिसका गौना नहीं हुआ था, मिलने आयीं। दुल्हन का नाम रामरखी था, पर ससुराल वालों ने उनका नाम लज्जावती रख दिया। गौना न होने के कारण दोनों ब्रह्मचारी थे। लज्जावती के पूछने पर भाई बालमुकुंद ने बताया कि कैद में उन्हें बालू मिली हुई रोटियाँ मिलती हैं तथा भीषण गर्मी में भी मच्छरों

भाई बालमुकुंद

से बचने के लिए कंबल ओढ़नी पड़ती है। उसी दिन से लज्जावती ने नियम बना लिया कि वह बालू मिश्रित रोटियाँ खायेंगी एवं कंबल ओढ़कर सोयेंगी।

फांसी के कुछ दिन पूर्व से लज्जावती ने भोजन एवं जल ग्रहण करना त्याग दिया था।

११ मई १९१५ को लज्जावती शादी के कपड़े एवं आभूषण पहनकर तुलसी के पौधे को सामने रख ध्यान-मग्न होकर बैठ गयीं। उसी ध्यानावस्था में उन्होंने आत्मबल से प्राण त्याग दिये।

पशु बलि का निषेध, देशद्रोही पति को मृत्युदंड, देशभक्त पति के साथ सह-प्रस्थान, भारतीय देवियों का वैशिष्ट्य है। अमृत महोत्सव के पावन पर्व पर उन्हें अनन्त श्रद्धा के साथ नमन। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (११३)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

श्रीरामकृष्णः

कामारपुकुर (छठवाँ दिन)
३ अक्तूबर, १९५७ ई.
शुभ विजया दशमी, बृहस्पतिवार

हालदारपुकुर में प्रतिमा का विसर्जन हुआ। नलिनी महाराज, गंगाधर महाराज, बगला महाराज, अनिल महाराज, अतुल महाराज, ब्रह्मचारी राधाचैतन्य, कान्त, विरूपाक्ष, चित्तरंजन, पतितपावन आदि महाराजगणों को प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्णः

जयरामवाटी
१३ अक्तूबर, १९५७

यहाँ से लगभग साढ़े सात बजे सुबह प्रस्थान करके नौ बजे फुलुई श्यामबाजार पहुँचा। मेरे साथ श्री शान्तिनाथ घोष दस्तिदार थे। किशोरी महाराज के निर्देश के अनुसार मैं डाक्टर राधारमण के पास गया। डॉक्टर बाबू बड़े ही निष्पंच और सरल व्यक्ति थे। वे स्वामी विरजानन्द के शिष्य थे। उन्होंने अपने साथ ले जाकर मुझे ईशान मल्लिक लोगों का शिवमंदिर, चण्डी मण्डप आदि दिखलाया। इसी मण्डप में ठाकुर कीर्तन करते थे। प्रातःकाल पूज्यपाद सुरेन महाराज ने हँसते हुए कहा – ''वहाँ कीर्तन के समय ठाकुर जब शौच हेतु जाते, तब भी कीर्तन-दल के लोग उनके पीछे-पीछे जाते।'' एक स्थान देखा, जहाँ से वे कीर्तन करते हुए आए थे, शीहड़ का मार्ग – इसी मार्ग से हृदयराम उन्हें लेकर शीहड़ लौट गए थे। कई मन्दिरों का दर्शन किया। पूर्वाह्न लगभग साढ़े दस बजे डॉक्टर बाबू के घर में चार रसगुल्ला, जल, चाय और पान खाकर नटवर गोस्वामी के लुप्तप्राय पैतृक घर का भग्नावशेष देखने गया। वहाँ से लगभग पौने ग्यारह बजे श्यामबाजार के रास्ते की धूल को शिरोधार्य करके डाक्टर बाबू के सौजन्य से मुग्धमन से जयरामवाटी प्रस्थान किया। अपराह्न लगभग बारह बजकर दस मिनट पर यहाँ पहुँच गया। तब सभी लोग प्रसाद ग्रहण कर रहे थे। पूजनीय सुरेन महाराज वापस आने के बाद बोले – ''श्रीरामकृष्ण-पोथी या अन्य पुस्तक से 'श्यामबाजार' नामक अध्याय पढ़ लेना।'' उनसे मैंने सुना कि ठाकुर ने नटवर गोस्वामी के घर बहुत स्वादिष्ट परवल की कलौंजी खाकर उसकी चर्चा दक्षिणेश्वर में की थी।

सन् १९६४ ई. में प्रेमेश महाराज के स्वास्थ्य में कुछ सामान्य प्रगति हो गई थी। डायरी के पृष्ठों में इसीलिए इसका कुछ उल्लेख था।

किन्तु १९६५ ई. से उनका स्वास्थ्य तेजी से गिर रहा था। यहाँ हमारा वर्णन बहुत सीमित रहा। पुराने कागज-पत्रों के देखने से पता चला कि दिनांक ०७-०४-१९६४ को महाराज ने कुछ बातें बताई थीं, जिन्हें सेवक ने लिखकर रख लिया था। यद्यपि इस विषय में कोई नवीनता नहीं थी, किन्तु इसे पढ़कर यह समझा जा सकता है कि वे किस तरह के चिन्तन-जगत् में अवस्थान करते थे या किस तरह का आध्यात्मिक परिमंडल बनाकर रखते थे। यह लेख संक्षिप्त होने पर भी अध्यात्म जगत् के गूढ़तत्त्वों का इतने प्रांजल और संक्षिप्त रूप में मिल पाना दुर्लभ है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कोई भी आन्तरिक साधक साधना-जीवन की अनुभूतियों को ऐसे सीमित रूप में पाकर लाभान्वित होगा।

१. ज्ञान क्या है? – एक वस्तु है, जो केवल जानती है, वह स्वयं को बोधज्ञान में समझती है और वह इच्छा होने पर अन्य वस्तु को भी जान सकती है, जानने के अतिरिक्त उसका और कोई कार्य नहीं है। यह ज्ञान या चैतन्य क्रीड़ा के बहाने अपनी बात भूलकर जड़ के साथ एक हो जाता है और जड़ को विविध भाँति से सज्जित करके क्रीड़ा करता है, उससे कभी सुख होता है, तो कभी दुख होता है। सुख

और दुख आपस में इस प्रकार संलग्न हैं कि एक को चाहने पर दूसरा अपने आप चला आता है, इसीलिए चैतन्य क्रीड़ा करते-करते थककर अपने स्वरूप में लौट जाता है। उस समय उसे पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है। यही मुक्ति है।

२. चैतन्य जब जड़ को लेकर क्रीड़ा करते हैं, तब वे समष्टि रूप में समस्त जड़ की जानकारी रखते हैं। फिर वे खण्ड-खण्ड रूप में होकर छोटे-छोटे व्यक्ति बनकर, अल्पज्ञ होकर क्रीड़ा करते हैं। इस जगत में अनन्त अल्पज्ञों को लेकर ही खेल हो रहा है। सम्पूर्ण चैतन्य सभी व्यक्तियों की समष्टि रूप में सर्वज्ञ होकर क्रीड़ा कर रहे हैं।

३. मनुष्य की इच्छा : स्मृतिबोध आदि सभी क्रियाएँ तभी होती हैं, जब चैतन्य जड़ के साथ मिलकर क्रीड़ा करते हैं। जड़ से पूर्णतया पृथक् हो जाने पर वे आत्मरति (आत्मक्रीड़ा) अवस्था में रहते हैं। इस आत्मरति-अवस्था की कल्पना करने में भी कष्ट होता है, इसीलिए हम लोग भगवान का कोई एक रूप लेकर आनन्दित रहने का प्रयास करते हैं। भगवान की इच्छा से यदि ये सब अवस्थाएँ कभी आती हैं, तो उसे लेकर साधक अधिक सिर नहीं खपाता। गोपाल-की-माँ के भाव-दर्शन को सोचकर देखो।

४. जब मैं देह-मन-बुद्धि को लेकर क्रीड़ा करते-करते थक जाऊँगा, तब मैं देहातीत अवस्था प्राप्त करने का प्रयास करूँगा। इसके पूर्व देह-मन को शुद्ध बनाकर, तन-मन के माध्यम से, मन के प्रबल आकर्षण से प्रेम का भोग करना ही जीवन की सार्थकता है।

५. घटना जिस तरह घटती है, उसे उसी तरह से जानना होता है। ऐतिहासिक घटनाएँ कई लोगों के मुखों से प्रचारित होने के कारण उसमें सत्य के साथ असत्य भी फैलता रहता है, किन्तु विज्ञान की घटनाएँ स्वयं परीक्षण करके देखी जा सकती हैं तथा अनेक बुद्धिमान लोग उनका परीक्षण करके देखते भी हैं, इसीलिए वे बिल्कुल सत्य होती हैं। धर्म एक प्रकार का विज्ञान है। उसके सभी कार्य या घटनाएँ सत्य की सटीक अभिव्यक्ति हैं। इसीलिए स्वामीजी ने धर्म को यथार्थ विज्ञान कहा है। किन्तु धर्म के सम्बन्ध में भी जो लोग विशेष जानकारी नहीं रखते हैं, वे लोग यथार्थ धर्म के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्त धारणाओं का ही पोषण करते हैं।

स्वामीजी और भारत के सभी ऋषियों ने यह देखा है कि जीव का आवरण हटते-हटते वह विविध अवस्थाओं से अग्रसर होते हुए एक ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जिसे भाषा या वाणी द्वारा अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। उसी अवस्था को कोई-कोई 'पूर्णता' कहकर वर्णित करते हैं, जिसमें 'उसे छोड़कर और कुछ भी नहीं' रहता। इस तरह का चिन्तन करने में भी हम साधारण मनुष्यों का हृदय काँप उठता है।

मनुष्य चिन्तन करते-करते देह को इस तरह भूल जाता है कि शरीर का सामान्य कष्ट उस समय स्वल्प मात्र भी अनुभव नहीं होता। द्वितीय अवस्था में मन को पूर्णत: स्थिर कर सकने पर मन के संकल्प-विकल्प आदि का कुछ भी अनुभव नहीं होता। तब यही अनुभव होता है, मानो 'मन नहीं है।' किन्तु उस समय भी यह अनुभव होता है कि 'मैं' हूँ। इस 'मैं-पन' के बोध में दीर्घ काल तक रह सकने पर 'मैं' शरीर, मन और बुद्धि से पूरी तरह पृथक् हो जाता है। इसे ही मुक्ति कहते हैं। इस अवस्था में नहीं पहुँचने पर भगवान के तत्त्व का बोध नहीं हो पाता। इस अवस्था में जीव जो समष्टि ब्रह्म से पृथक् रहता है, उसका कारण यह है कि आनन्दमय नामक एक कोश उसे आवृत किए रहता है।

जब जीव देह-मन-बुद्धि के आवरण के बाहर जाकर यह अनुभव करता है कि मैं ब्रह्म में हूँ, तब वह ब्रह्म की विद्यामाया के अधीन होता है, किन्तु जब उसका आनन्दमय कोश से आवृत स्वरूप विस्मृत हो जाता है एवं वह सोचता है कि वह ब्रह्म से पृथक एक जीव है, जिसे हम सभी निरन्तर अनुभव करते हैं, तब वह ब्रह्म की अविद्या माया के अधीन रहता है। हमलोग सुषुप्ति काल में उस अज्ञान का नित्य अनुभव करते हैं। सुषुप्ति काल में यह जो 'मैं नहीं हो जाता हूँ' यह अविद्या का कार्य है।

इस अविद्या के राज्य से बाहर निकलने के लिए ब्रह्म को तीव्रतापूर्वक प्रेम करना चाहिए। इसीलिए सारे संसार में इतनी पूजा, उपासना, धार्मिक सम्प्रदाय, विविध साधनाएँ विभिन्न आचार-विचार प्रचलित हैं। जो लोग मुक्ति चाहते हैं, वे भगवान से प्रेम करने के सभी प्रकार के उपायों का अवलम्बन करते हैं और जो लोग मुक्ति नहीं चाहते, वे धर्म के नाम पर कितना शोरगुल, कितनी कलह, यहाँ तक कि मार-पीट, रक्तरंजित कर जगत् को अशान्तिमय कर देते हैं।

हिन्दू धर्म का आरम्भ उपनयन में था। आठ-नौ वर्ष की

शेष भाग पृष्ठ १३५ पर

भगवान ने यह संसार ईश्वरप्राप्ति हेतु दिया है

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

धर्म के प्रति हमारी जो भावना है, वह महत्त्व की है। संसार में सबकुछ आने-जानेवाला है, लेकिन ईश्वर ही सर्वदा हमारे साथ रहनेवाले हैं। हम मर्यादा में रहें, सादगी से रहें, जगत के साथ व्यवहार करें, पर मन परमार्थ में रहे। मरते समय भी भगवान याद रहेंगे, तो मरने में भी आपको आनन्द आयेगा। अपने आप में रहने का सबसे बड़ा सुख है। जब प्रलोभन आते हैं, तो विवेक से हमारा मन हमारी सहायता करता है। इसलिए विवेक से विचार करना चाहिए कि क्या अच्छा है और क्या बुरा।

हम सबके लिए प्रार्थना ही मुख्य बात है। ध्यान करो और भगवान के नाम का जप करो। हम सगुण-साकार हैं, इसलिए निर्गुण-निराकार की साधना नहीं कर पाते। हमारे लिए निर्गुण-निराकार शब्दमात्र है। इसलिए सगुण-साकार ईश्वर की उपासना करनी चाहिए। कल्पना करते-करते सगुण-साकार प्रत्यक्ष हो जाता है, तब आनन्द ही आनन्द है। ईश्वर जीवन्त हैं और चैतन्य ज्योतिस्वरूप हैं, अपने हृदय में बैठे हुए हैं। मन की आँखों से देखें, तो इष्ट हमारे साथ हैं। अपने इष्ट को मन की आँखों से देखने का प्रयत्न करें। अपने इष्ट का चिन्तन करें। अपना देह-बोध कम करें, क्योंक हमें देह से ऊपर उठना है। हमारे हृदय में हमारे इष्ट बैठे हैं, ऐसी कल्पना करनी है। संसार को भूलना है। मैं को भी धीरे-धीरे भुलना है। केवल हमारे इष्ट रह जायेंगे। त्याग का तात्पर्य है – ईश्वर ही सत्य है, बाकी कुछ नहीं है, ऐसा सोचने को त्याग कहते हैं। अपने इष्ट की चन्द्रमा के ज्योति के समान कल्पना करनी चाहिए। हमलोगों को बनिया बुद्धि नहीं रखनी चाहिए।

हमलोगों को मनुष्य के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। जितनी भगवान ने हमें शक्ति दी है, उतनी सहायता करनी चाहिए। हम मरनेवाले ही हैं, तो भगवान का नाम स्मरण ही करें, नहीं तो बचके ही क्या लाभ है? यह शरीर ईश्वर प्राप्ति के लिए ही मिला है, लेकिन हमलोग उसकी ओर ध्यान नहीं देते, हम संसार में ही फँसे रहते हैं। संसार हमारा शत्रु नहीं है। यह संसार हमें भगवान ने ईश्वर-प्राप्ति के लिये दिया है। हम अपना प्राप्त कर्तव्य-कर्म अच्छी तरह से करके भगवान की भक्ति करके ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। जीवन में संसार नहीं परमात्मा चाहिए। कर्तव्य कर्म का पालन करते-करते मरते समय ईश्वर की याद आये, संसार की याद नहीं आये, तब तुम्हारे मुक्ति का द्वार खुल जायेगा। यदि संसार की याद आयी, तो पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्।

आध्यात्मिक साधना हमें मृत्यु के समय काम आयेगी। जिनके जीवन में संसार ही प्रधान है, ऐसे लोगों के कुसंग से बचना चाहिए। संसार से घृणा नहीं करनी है। संसार भी हमें भगवान ने ही दिया है। संसार में रहकर घर की लोगों की और दूसरों की सेवा-सहायता करनी चाहिए। मन में सब जीवों के प्रति प्रेम रखना है। कोई हमें परेशान करते हैं, तो उससे दूर रहो, उससे उदासीनता का भाव रखो, लेकिन बदले की भावना मत रखो। हमारे मन में उनके प्रति कभी भी अशुभ वृत्ति न आये। हमारी भावना शुभ रहे। हमारे मन में अशुभ भावना आयी, तो वह भीतर ही भीतर बहुत कष्ट देती है। ऐसी परिस्थिति में भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए – हे प्रभु ! हमें सहने की शक्ति दो या तो उन्हें सद्‌बुद्धि दो। कठिन परिस्थिति में भी अशुभ चिन्तन मत करो। हमें जो कष्ट हो रहा है, वह हमारे ही किसी कर्म का फल होगा। शत्रुता का कभी चिन्तन नहीं करना है। उसको भगवान देखेंगे। ऐसा सोचना चाहिए। साधक-साधिका को सबके प्रति कल्याण का चिन्तन करना है। जैसे मन्दिर पूजा करने की जगह है, वैसे ही संसार हमें भगवान लाभ करने के लिये मिला है, नहीं तो पता नहीं अपने को कितने जन्म लेने पड़ेंगे।

शिवरात्रि के दिन भगवान शिव से प्रार्थना करें कि प्रभु हमारे मन को सांसारिकता से निकाल दो और तुम्हारे चरणों में भक्ति दो। हे प्रभु हमें शरणागति दो ! ये सब तुम्हारी कृपा से ही सम्भव है। मैं तुम्हारी कृपा पर आश्रित हूँ। प्रभु कृपा

शेष भाग पृष्ठ १३५ पर

अध्यात्म और मेरा चिकित्सकीय जीवन

डॉ. राजीव रंजन, छपरा, बिहार

प्राय: आजकल अध्यात्म की चर्चा सुनने को मिलती है। लोग कुछ सामान्य सकाम पूजा-पाठ, दान आदि को ही अध्यात्म मान लेते हैं। समाज के बहुत से लोग सच्ची आध्यात्मिकता को समझ नहीं पाते और समझकर भी उसे अपने जीवन में उतार नहीं पाते, अपने कार्य-क्षेत्र में कार्यान्वित नहीं कर पाते। चूँकि मैं चिकित्सा-क्षेत्र से हूँ, तो उससे सम्बन्धित कुछ बिन्दुओं पर आपसे चर्चा करूँगा।

अध्यात्म का शाब्दिक अर्थ होता है – आत्मा से सम्बन्ध रखनेवाला, आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी विचार, परमात्मा। जब हमारा कर्म परमात्मा से जुड़ेगा, तो वह अध्यात्म होगा।

सबसे प्रेम करना, उनसे एकत्व का बोध होना, इस अनुभूति का जीवन में उतर जाना, व्यवहार द्वारा परिलक्षित होना और फलस्वरूप आत्मशान्ति का अनुभव करना आध्यात्मिकता है। वेदान्त और गीता से हमें यही शिक्षा मिलती है कि ईश्वर सबमें है। यह परम सत्य है। किन्तु इस आध्यात्मिकता को अपने कर्म क्षेत्र में उतारने में तरह-तरह की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। बचपन से ही, होश सँभालते ही हमें जो शिक्षा मिलने लगती है, उसमें भेद पर बहुत बल दिया जाता है। चाहे स्कूल की पढ़ाई हो या घर की, भेद-बुद्धि सिखायी जाती है। लेकिन सच तो यही है कि एक ही ईश्वर विभिन्न रूपों में सर्वत्र विराजमान है।

मैं एक चिकित्सक हूँ। इस नाते जब मैं उक्त अध्यात्म को अपने कर्म क्षेत्र में उतारने का प्रयास करता हूँ, तब बहुत सारी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जिस दिन मैं सहृदयता के साथ अपने रोगियों में नारायण का दर्शन करने का प्रयास करता हूँ, उस दिन मन आनन्द से पूर्ण जाता है। इतनी प्रसन्नता होती है कि मैं सबकुछ भूलकर उस आनन्द में डूब जाता हूँ। इसके विपरित जब मन नकारात्मक विचारों से भरा रहता है, उस दिन रोगी में नारायण नहीं दिखते और मन चिड़चिड़ाहट, तनाव, असन्तोष आदि से भर जाता है। मैं अनुभव करता हूँ कि ठीक ऐसी ही विकृतियों से परेशान लोग रोगी बन जाते हैं और चिकित्सक के यहाँ उपचार करवाने के लिए उपस्थित होते हैं। करीब-करीब ७० प्रतिशत रोगी ऐसे ही मानसिक विकारों से परेशान होकर आते हैं।

ऐसे रोगियों की चिकित्सा के लिए जो दवाईयाँ उपलब्ध हैं, उनमें चिकित्सा की पूरी क्षमता नहीं होती। पूर्ण चिकित्सा के लिए आवश्यक है, चिकित्सक की ओर से मिलनेवाला प्रेम, चाहे चिकित्सक द्वारा उसे ईश्वर स्वरूप मानने या अपने सगे-सम्बन्धी, भाई-बन्धु मानने पर मिले। यही प्रेम उस रोगी की चिकित्सा को पूर्ण बनाता है, 'संजीवनी' का काम करता है। मैं अक्सर पाता हूँ मरीज दवा लेना छोड़ने के बाद भी वर्षों तक ठीक रहता है, क्योंकि उसकी मानसिक विकृतियों का प्राकृतिक उपचार चिकित्सक के प्रेम से हो चुका होता है। मेरे लिए चिकित्सा करते समय एकत्व का भाव या सभी रोगियों में ईश्वर-दर्शन का भाव रखना 'स्टेथोस्कोप' जैसा लगता है, जिसके बिना सही इलाज नहीं हो सकता।

कोई आकर गुणगान करता है – 'आप तो भगवान हैं, आपने हमें बचा लिया' और कोई रोगी सामने ही गाली देता है और भला-बुरा कहकर चला जाता है। इन दोनों परिस्थितियों में मन को स्थिर बनाकर रखना बहुत आवश्यक है, क्योंकि अगर रोगी और मैं दोनों ही एक ही ईश्वर के अंश हैं, तो अपनी निंदा या प्रशंसा किस काम की? प्राय: हमें विपरीत परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ता है। मेरे क्लिनिक में कभी किसी रोगी की मृत्यु हो जाती है, तो स्वाभाविक रूप से मैं उसके परिजनों के दुख से दुखी हो जाता हूँ। लेकिन मेरे या मेरे आत्मीय जनों के घर उसी दिन कोई खुशी का मौका होता है, तो मुझे वह भूमिका भी निभानी पड़ती है। यह भी एक तरह की आध्यात्मिक साधना ही है। गीता में उसे 'स्थितप्रज्ञ' कहा गया है। जो गम और खुशी को साक्षी-भाव से देखता है। कभी-कभी हम स्वयं भी बीमार होते हैं, फिर भी यदि दूसरा हमसे अधिक बीमार है, तो उसके सामने स्वयं को प्रसन्न और ऊर्जावान दिखाना पड़ता है। यह सोचकर कि ये रोगी-नारायण हैं और मैं इनकी सेवा कर रहा हूँ, इसमें कोई त्रुटि नहीं होनी चाहिए। यह भी आध्यात्मिकता ही है।

अपनी सेवा द्वारा यह परिलक्षित करना कि रोगी का कष्ट

मेरा कष्ट है और उसे ठीक करने का हर सम्भव प्रयास कर रहा हूँ, क्या यह आध्यात्मिकता नहीं है?

रामायण में सुषेन वैद्य एक शत्रु दल के रोगी (लक्ष्मणजी) की चिकित्सा करते हैं और उन्हें ठीक कर देते हैं। यहाँ पर रोगी के परिजन की ओर से भी चिकित्सक को भगवान मानकर रोगी को सौंप दिया जाता है और चिकित्सक भी रोगी को भगवान मानकर ठीक करने का प्रयास करता है। इसका परिणाम अच्छा होता है। मेरी समझ से यह उदाहरण चिकित्सकीय अध्यात्म का चरम उदाहरण है।

मन्दिरों में भगवान को प्रसन्न करने के लिए भगवान की पूजा विभिन्न प्रकार की सामग्रियों से की जाती है। एक चिकित्सक अपने रोगी-नारायण को कई प्रकार की दवाइयाँ देकर उसके कष्ट-निवारण का प्रयास करता है, उसे स्वस्थ और प्रसन्न करने की चेष्टा करता है। मेरे लिए यह भी अध्यात्म है।

कभी-कभी अस्पताल का सफाईकर्मी कड़ाके की ठंढ़ में अस्पताल की सफाई करता है, तब मेरा मन उसे गले लगा लेना चाहता है। उसमें साक्षात् शिव दिखने लगते हैं। परन्तु, संसार ने तो ऊँच-नीच, जात-पात का भेद खड़ा कर रखा है। मेरा मन इस भेद-बन्धन से निकलने को व्याकुल हो जाता है। मन उस शिव का चरण-स्पर्श करना चाहता है, जो इतना दुष्कर कार्य करके भी हमें साफ-सुथरा रखते हैं। यह अनुभूति अपने अन्दर आना अध्यात्म ही तो है।

सबमें ईश्वर-दर्शन, चाहे वह कोई भी हो, व्यावहारिक वेदान्त है। 'गीता' और 'उपनिषद ' हमें यही सिखलाते हैं। इसे अपने जीवन में उतार लेना ही अध्यात्म है। जिसने इस भाव को अपने जीवन में थोड़ा भी अनुभव नहीं किया, उसका जीवन बाहर से देखने में भले ही सुखद लगता है, पर वास्तव में वह कष्ट में ही रहेगा। उसे आत्मिक शान्ति नहीं मिल सकती और न सही अर्थ में आनन्द की अनुभूति हो सकती है। लेकिन जिसने इसके अंश मात्र को भी अपने जीवन में उतार लिया, वह सदा आनन्द से परिपूर्ण रहेगा। सबसे एकत्व का बोध उसे सकारात्मक ऊर्जा से भर देगा। उसकी धरती बड़ी हो जाएगी। उसका आकाश व्यापक हो जाएगा। उसे अपने भीतर एक अद्भुत विराटता का बोध होगा। बाहर से वह वैसा ही दिखेगा, किन्तु उसके भीतर का संसार बहुत बदल जाएगा। यही परिवर्तन अध्यात्म है। वस्तुत: अध्यात्म आत्मा का विज्ञान है। इसकी हमें अपने लिए और दूसरों के लिए भी बहुत आवश्यकता है। अध्यात्म हमारे डीएनए में है। स्वस्थ का अर्थ ही स्व में स्थित होना है। जब-जब हम इस मूल स्वभाव से अलग होते हैं, अस्वस्थ हो जाते हैं। आध्यात्मिक होना स्वस्थ होना है। यही सार्वजन्य काम्य भी है। ○○○

पृष्ठ १३२ का शेष भाग

आयु में ही सभी बालकों को हृदय के भीतर ब्रह्मज्योति का ध्यान करना सिखाया जाता था, अब तो वह सब नहीं है। किन्तु सारे समाज में विविध रूप में कुछ-कुछ साधनाएँ प्रचलित हैं। जो लोग सरल भाव से उन सब साधनाओं का अनुसरण करते हैं, वे लोग धीरे-धीरे कुछ न कुछ ज्ञानालोक पाते रहते हैं और वे समाज में अच्छे व्यक्तियों के रूप में परिचित होते हैं।

गीता पढ़ो ! गीता पढ़ो ! '**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**' अध्यात्म विद्या एक विज्ञान है। दीर्घकाल तक इसका विशद विवेचन या चर्चा न करने से सभी बातें सुस्पष्ट रूप से समझ पाना असम्भव है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १३३ का शेष भाग

कब करेंगे और कैसी कृपा करेंगे, हम समझ नहीं सकते। आध्यात्मिक जीवन का सत्य यही है कि स्वस्थ शरीर, रोग ये भी भगवान की ही कृपा है। भगवान की कृपा के लिये नाम-जप और प्रार्थना का बारम्बार प्रयत्न करना चाहिए। हमारे जीवन में अच्छा-बुरा जो कुछ भी होता है, वह भगवान की कृपा से ही होता है। मुख्य बात यह है कि भगवान का नाम उनका स्मरण-मनन ये सब करना है। ये सब ईश्वर करा रहे हैं, ऐसा भाव रखना है। हमारा पूरा जीवन ईश्वर के चरणों में समर्पित रहे। यह सब हम भगवान के प्रेम के लिये ही कर रहे हैं। जन्म-मृत्यु, ये भगवान के हाथ में है और ये हमारे कर्म का ही फल है। पिछले जन्म में जैसे कर्म किये हैं, वैसा मिल रहा है। भगवान ने हमें यह दिया है, यह सबको स्वीकार करना चाहिए और अपने जीवन को उन्नत करना चाहिए। ○○○

जब हृदय में मन्दिर बनने लगा

श्रीधर कृष्ण

ईआरपी कंसल्टेंट, चेन्नई, तमिलनाडु

पूसलार नयनार का जन्म आधुनिक चेन्नई शहर के पास निन्ड्रवुर स्थान (वर्तमान में तिरुनिन्ड्रवुर) में हुआ था। वे भगवान शिव के बहुत बड़े भक्त थे। उनकी इच्छा भगवान शिव के लिए एक भव्य मन्दिर बनाने की थी। चूँकि उनके पास इसके लिए पर्याप्त धन नहीं था, इसलिए उन्होंने अपने हृदय में मन्दिर बनाने की सोची। उन्होंने एक शुभ दिन मन्दिर का भूमि पूजन किया तथा मन्दिर की नींव रखी और अपने हृदय में मन्दिर का निर्माण आरम्भ किया। उन्होंने मन्दिर बनाने की विधि सीखी और उसका पालन करते हुए मन्दिर बनाने लगे। दूर-दूर से वे पत्थर, धातु तथा निर्माण के लिए अन्य आवश्यक सामग्री लाते थे। कुशल राजमिस्त्री और मूर्तिकार को खोजकर उन्होंने अपने हृदय के मन्दिर-निर्माण के कार्य में लगाया। बड़े प्रेम और निगरानी तथा देखभाल के साथ, बिना किसी की जानकारी में रात और दिन कड़ी मेहनत करते हुए वे मन्दिर-निर्माण करने लगे। नींव से लेकर ऊपर परत-दर-परत उन्होंने कुशल कारीगरों द्वारा तराशे गए पत्थरों से मीनार तक मन्दिर-निर्माण करने लगे। गर्भगृह के साथ-साथ मण्डप भी बनकर तैयार हो गया। शिखर पर मन्दिर का कलश स्थापित किया गया। पूर्ण रूप से मन्दिर निर्माण होने पर उन्होंने मन्दिर का कुम्भाभिषेक का दिन निश्चय किया।

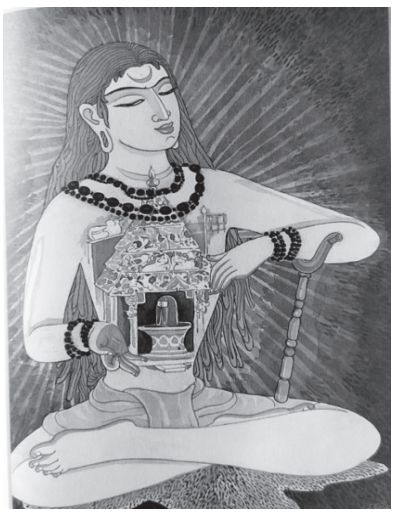

पूसलार नयनार

इस बीच कांचीपुरम् में पल्लव राजा राजसिम्हा द्वारा पहले से ही एक और मजबूत बृहत मन्दिर बनाया जा रहा था। यह मन्दिर भी कुम्भाभिषेक समारोह के लिए तैयार था। पिछली रात को भगवान शिव सपने में राजा के पास आए और उनसे अपने मंदिर के उद्घाटन को स्थगित करने के लिए कहा। उन्होंने कहा, ''कल मैं अपने एक भक्त पूसालार के मन्दिर के कुम्भाभिषेक के लिए जा रहा हूँ। इसलिये तुम स्थापना के लिए कोई दूसरा दिन निश्चित करो।'' स्वप्न के जगने के बाद राजा भक्त पूसलार की खोज करने के लिए चले।

निनरावुर पहुँचकर उन्होंने मन्दिर की खोज की। आश्चर्यजनक बात यह थी कि वहाँ ऐसा कोई मन्दिर ही नहीं था। गाँववालों ने पुसालार के विषय में बताया। राजा ने पुसालार से पूछा, 'आपने जो महान मन्दिर बनवाया है, वह कहाँ है? भगवान शिव ने बताया कि आज कुम्भाभिषेक का दिन है।' पूसलार ने बताया – ''मैंने अपने हृदय में मन्दिर का निर्माण कराया है।'' राजा एक सच्चे भक्त की निश्चल भक्ति से आश्चर्यचकित रह गये, सम्मान से उनको प्रणाम किया और अपने राज्य वापस लौट गये। ○○○

कविता

रामकृष्ण प्रभु हृदय विराजो

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

रामकृष्ण प्रभु हृदय विराजो, तुम ही जीवन के हो सार।
जीवन का तम नाश करो प्रभु, हर लो मेरा विषय-विकार।।
त्रिगुणातीत प्रपंचरहित तुम, सब भूतों के हो आधार ।
परमानन्दी परमहंस तुम, ब्रह्मरूप तुम हो साकार ।।
तुम्हीं प्रेम के परम स्त्रोत हो, पतितजनों के हो उद्धार ।
संशयराक्षस के संहारक, अटल भक्ति के तुम्हीं अगार ।।
ब्रह्मा विष्णु महेश देवता, ये सब तेरे ही आकार ।
हे जगदीश्वर दुःखतापहर, ज्ञानसिन्धु तुम अपरम्पार ।।
बुद्धिहीन मैं धर्महीन हूँ, ज्ञान नहीं पूजन-उपचार ।
फिर भी कृपा तुम्हारी पाकर, खड़ा हुआ हूँ तेरे द्वार ।।
मोक्षविधायक रामकृष्ण प्रभु, विनती तुमसे बारम्बार ।
अपना दिव्य रूप दिखलाकर, करो मुझे भवसागर पार।।

गीतातत्त्व-चिन्तन (१)

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ७वाँ, ८वाँ, ९वाँ और १०वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के पूर्व के अंकों में प्रकाशित हो चुका है। अब प्रस्तुत है ११वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

विभूति दर्शन से सन्तुष्ट न हो अर्जुन द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन के लिये प्रभु से प्रार्थना

दसवें अध्याय में हमने दिखाया कि भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अपनी विभूति का दर्शन कराते हैं। अर्जुन ने एक प्रश्न पूछा था – **केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया**। इस प्रश्न का उत्तर भगवान कृष्ण देते हैं और वही उत्तर दसवें अध्याय के रूप में हमारे सामने है। वहाँ पर भगवान बताते हैं कि उनके चिन्तन करने के कितने प्रकार हैं। जिस प्रकार की दृष्टि हो उस रुचि के अनुकूल चिन्तन करने का तरीका अर्जुन के सामने भगवान प्रदर्शित करते हैं। कहते हैं – अर्जुन ! तू जैसा भी चाहता है, उसी प्रकार से तू मेरा चिन्तन कर सकता है और प्रत्येक श्रेणी में अपनी विशेष विभूति का वे बखान करते हैं। अर्जुन उन्हें इतना प्रिय है कि वे कहते हैं – **पाण्डवानां धनंजयः**। पाण्डवों में यदि कोई मेरी विभूति को पहचानना चाहे, तो वह विभूति है धनंजय। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान कृष्ण सामने खड़े अर्जुन से (रथ पर अर्जुन भगवान के पीछे खड़ा है और घोड़ों की रास हाथ में लिए हुए श्रीकृष्ण पीछे की ओर मुड़कर देख रहे हैं, इसलिए अर्जुन उन्हें सामने खड़ा दिखाई देता है) कहते हैं – यदि तू चिन्तन करना चाहता है; पाण्डवों में मेरी विभूति को देखना चाहता है, तो तेरी, मेरी विभूति को एक ही समान जान। भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं और उस स्नेह को अर्जुन समझता भी है, इसलिए कहता है - प्रभो ! यदि आप मुझे इस योग्य समझते हैं कि मैं आपके ऐश्वर्यमय रूप को देखूँ, तो कृपा करके उस रूप का दर्शन करा दीजिए।

क्या अर्जुन ईश्वर-दर्शन का अधिकारी है?

आप यह जानते हैं कि शास्त्रों में भगवान को जानने की तीन सीढ़ियाँ बताई गई हैं – श्रवण, मनन और निदिध्यासन। अर्जुन श्रवण तो कर रहा है। भगवान उसे जो उपदेश प्रदान करते हैं, उनको अर्जुन सुनता है। इस प्रकार पहली सीढ़ी तो वह पार कर चुका है। इसके साथ ही साथ वह मनन भी कर रहा है। उसके मनन करने का प्रमाण यह है कि बीच-बीच में वह जो प्रश्न पूछता जाता है, भगवान की बताई हुई बात को ठीक से समझा देने का उनसे अनुरोध करता है कि ज्ञान कर्म से श्रेष्ठ है, तो मुझे घोर कर्म में नियोजित क्यों करते हैं? इस प्रकार की स्पष्ट बातें भगवान कृष्ण से अर्जुन कहता है। इसका अर्थ यही है कि वह चिन्तन कर रहा है, मनन कर रहा है। अर्जुन ने जो कुछ सुना उस श्रवण को बेकार नहीं जाने दिया। बल्कि सुनकर वह मनन करता है और मनन करने के बाद तीसरी सीढ़ी जो साधक के सामने आकर उपस्थित होती है, वह है निदिध्यासन की। आत्मा को मैं प्रत्यक्ष देख लूँ। प्रश्न हुआ कि क्या आत्मा को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है? उत्तर मिला कि हाँ, आत्मा को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः** – उसको देखना चाहिए, क्योंकि वह देखा जाता है। केवल सुनने या विचार करने की बात वह नहीं है। जीवन में आत्मा का दर्शन करने के उपाय वही बताए गये – **आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः** – आत्मा के सम्बन्ध में पहले सुनो, सुनी हुई बात का मनन करो और फिर उसका निदिध्यासन करो। ये सीढ़ियाँ अर्जुन पार कर चुका है और तीसरी सीढ़ी के विषय में हम यह कह सकते हैं कि दर्शन के लिए अर्जुन के मन में आकुलता है।

व्याकुलता द्वारा आत्मसाक्षात्कार सम्भव

जब साधक श्रवण कर लेता है और जो कुछ सुना है उसके बारे में मनन भी करने लगता है, तब यदि उसका श्रवण ठीक से हुआ है और मनन भी ठीक ढंग से हुआ है, तो उसके भीतर उस तत्त्व को जानने की इच्छा प्रबल होती है। केवल बातें सुनने से उसे तृप्ति नहीं मिलती। वह चाहता है कि वह तत्त्व आकर उसके जीवन में उतर जाए। उसे वह देखना चाहता है। उसका दर्शन करना चाहता है। उसका संस्पर्श चाहता है। उसे छूकर देखना चाहता है। इसलिए वह अपने भीतर आकुलता का अनुभव करता है। हमारे यहाँ जितने भी तत्त्वद्रष्टा हुए, चाहे वे इस देश के थे अथवा बाहरी देशों के, उनके भीतर इसी प्रकार की आकुलता दिखाई देती है। ईसा मसीह के पास एक साधक आया करता था। उनके उपदेशों का श्रवण करता था और मनन भी करता था। उसने एक दिन पूछा – ईश्वर के दर्शन किस प्रकार होते हैं? उन्होंने कहा – तुम अमुक दिन सुबह आ जाना। जिस समय मैं नदी पर स्नान करने जाता हूँ, उस समय आकर मेरे साथ नदी पर चलना। वहीं मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूँगा। साधक आया। दोनों नदी पर गए। स्नान के लिए पानी में उतरे। साधक ने भी डुबकी लगाई। ईसा मसीह ने उसके सिर को दबाकर पानी के भीतर ही दबाए रखा। साधक छटपटाया। साँस लेने में कष्ट होने लगा। ईसा ने जब देखा कि और कुछ देर पानी में रहने से वह बेहोश ही हो जाएगा। तब उसे बाहर आने दिया। साधक हड़बड़ाकर ऊपर आया और लम्बी साँसे खींचने लगा। ईसा ने पूछा – पानी के भीतर उसे कैसा लग रहा था? मात्र एक साँस लेने के लिये बड़ी आतुरता हो रही थी। ईसा ने उससे कहा – जब तुम्हारे भीतर इसी प्रकार की छटपटाहट उस ईश्वर को देखने के लिए आएगी, तब समझ लेना कि ईश्वर तुम्हारे बिल्कुल समीप हैं। बस इसी से तुम्हें तत्त्व का ज्ञान हो जाएगा। यह एक उदाहरण है, जिससे हम समझ पाते हैं कि किस प्रकार की व्याकुलता भगवान के दर्शन में हमारे लिए सहायक होती है।

यहाँ पर अर्जुन कुछ इसी प्रकार की व्याकुलता को प्रकट करता है। उसकी बातों से तो उसकी आकुलता की तीव्रता का सही अनुमान नहीं लगता, पर उसकी बातों को ध्यान से सुनने से पता लगता है कि तत्त्व के विषय में वह जानने का इच्छुक तो है ही। उसमें विनय का भाव भी है, समर्पण का भाव है। वह विभूति प्राप्त करके भगवान से याचना नहीं करता, बल्कि विनम्रता से निवेदिन करता है कि भगवान ने अपने जिस ऐश्वर्यमय रूप का वर्णन किया, यदि वे उसे उस तत्त्व का दर्शन करने के लिए योग्य समझें, उसे कृपा करके दिखाना चाहें, तो वह अनुगृहीत हो।

ग्यारहवें अध्याय को इसीलिए इतना सुन्दर माना जाता है कि इसमें भगवान का दर्शन है। साधक को पहली बार यहाँ भगवान के दर्शन हो रहे हैं। भगवान कृपा करके उस साधक को दर्शन दे देते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि ईश्वर के दर्शन तभी होते हैं, जब भगवान की कृपा होती है। प्रश्न उठ सकता है कि यदि भगवान की कृपा पर ही उनके दर्शन आधारित हों, तब फिर मनुष्य क्या करे? साधक के हाथ में क्या है? पुरुषार्थ का जीवन में कोई स्थान है या नहीं? मनुष्य पुरुषार्थ करे या न करे? भगवान के दर्शन प्राप्त होने में भगवान की कृपा ही यदि एकमात्र कारण हो, तब फिर साधक को साधना करनी चाहिए या नहीं? इस बात का उत्तर भी गीता के माध्यम से प्राप्त हो जाता है।

भगवत्कृपा और पुरुषार्थ

हम देखते हैं कि कतिपय महापुरुषों को भी अपने जीवन में इस प्रश्न का बड़ा सुन्दर उत्तर मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव अपने भक्तों से कहते थे कि ईश्वर की इच्छा के बिना एक तिनका भी नहीं हिल सकता। उनके दर्शन भी उनकी कृपा से ही प्राप्त हो सकते हैं। शास्त्रों में भी यही बात कही गई –

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्।

श्रुति भगवती में एक वाक्य कह दिया गया है –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन –

यह जो आत्मतत्त्व है, यह बहुत बड़े पाण्डित्य से नहीं मिलता। किसी ने यदि बड़ी पण्डिताई अर्जित कर ली, बहुत विद्वान है, शास्त्र का व्याख्यान करने में बड़ा कुशल है, पर इन सबसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। न प्रवचन से मिलता है, न विद्वत्ता से मिलता है कि बहुत से वेदों को पढ़ डाले और सोचे कि उनके बल पर आत्मज्ञान प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार से आत्मा का ज्ञान नहीं होता। तब आत्मा का ज्ञान कैसे होता है? कहते हैं, यह आत्मा जिस व्यक्ति को चुन लेता है, उसके प्रति अपने स्वरूप को प्रकट कर देता है। यह कृपा की बात हुई न। चुनाव आत्मा की ओर से हुआ, आत्मा ने व्यक्ति के सामने अपने स्वरूप को प्रकट कर

दिया। यह आत्मा जिस व्यक्ति को चुनता है, उस व्यक्ति के द्वारा वह देखा जाता है। इस प्रकार आत्मा उस अपने चुने हुए व्यक्ति के सामने अपने स्वरूप को प्रकट कर देता है।

वन-गमन के समय भगवान राम जब जानकी मैया और लक्ष्मणजी के साथ वाल्मीकि आश्रम में पहुँचे और सहास्य भगवान ने मुनि से प्रार्थना की – आप कृपया मुझे रहने के लिए स्थान बता दें। तब मुनिवर ने हँसकर कहा –

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
औरु तुम्हहिं को जाननिहारा।।
सोई जानइ जेहि देहु जनाई। २/१२६/२-३

आप तो बहुत लीला करते हैं, भगवन्। आपको कौन जान सकता है? ब्रह्मा, विष्णु महेश भी आपके तत्त्व को पूर्ण रूप से नहीं जानते। तब साधारण मनुष्य तो जान ही कैसे सकते हैं? वही जान जाता है, जिसको आप कृपा करके जना देते हैं।

शास्त्रों से यही बात सिद्ध होती है कि भगवान की जिस पर कृपा होती है, वही भगवान को जानने में समर्थ है। श्रीरामकृष्ण देव से उनके शिष्य भी यही पूछते हैं कि जब भगवान के दर्शन उनकी कृपा से ही प्राप्त हो सकते हैं, तब हमें क्या करना चाहिए? फिर हमारे पुरुषार्थ का कोई अर्थ है भी या नहीं?

श्रीरामकृष्ण उन्हें बताते हैं – हमारा पुरुषार्थ ऐसा हो, जिससे भगवान की कृपा हम पर आवे। हमारी व्याकुलता ऐसी हो जिससे माँ की कृपा हम पर हो। श्रीरामकृष्ण उदाहरण देते हैं – जैसे गंगा के वक्ष पर कई नौकाएँ तैर रही हैं। हवा भी बह रही है। कृपा क्या किसी से पक्षपात करती है? भक्तगण इस प्रश्न को समझ नहीं पाए। तब उन्होंने बताया – देखो, यह जो हवा बह रही है, इसके मन में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है। वह ऐसा नहीं करती कि किसी नौका पर कम लगे और किसी नौका पर अधिक। जो नाविक अपनी नौका का पाल खोल देगा, उस नौका को हवा का वेग अधिक मिलेगा और उस नौका की गति दूसरी नौकाओं की गति की अपेक्षा तेज हो जाएगी। इसी प्रकार भगवत्कृपा रूपी वायु में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं। सभी जीवों को वह समान रूप से मिलती है। जो जीव पाल खोल देता है, उसे ऐसा अनुभव होता है कि उसे अपने जीवन में भगवत्कृपा अधिक प्राप्त हो रही है। पाल खोलने का अर्थ है पुरुषार्थ प्रकट करना। उस कृपा रूपी वायु से अधिक मात्रा में ग्रहण करने की चेष्टा करना। वे कहते हैं – भगवान की कृपा तो बरसती ही है। जो जितनी मात्रा में ले ले। ईश्वर की कृपा ईश्वर से दी जानेवाली वस्तु नहीं है। वह तो साधक की ओर से ली जानेवाली वस्तु है। इसका अर्थ हुआ कि भगवान की कृपा तो हरदम है ही। यह तो हम पर निर्भर करता है कि हम उसको कितनी मात्रा में लेने में समर्थ हैं।

एक दूसरा उहारहण है – कोई छोटा बच्चा रोता है, तो उसे भुलाने के लिए माँ पहले कोई खिलौना दे देती है। फिर भी चुप न होने से मिठाई दे देती है। उससे भी जब नहीं भूलता, तब माँ उस बच्चे को अपनी गोद में उठा लेती है। अब जो ईश्वरकृपा का पक्षधर है, वह कहेगा – देखो! माँ ने बच्चे पर कृपा की। इसीलिए बच्चा माँ की गोद में पहुँचा। माँ ने उठा न लिया होता, तो वह बच्चा माँ की गोद में पहुँचता कैसे? जो पुरुषार्थ का पक्षधर है, वह कहेगा – माँ ने कृपा तो की, पर उस कृपा को पाने के लिए बच्चे को पुरुषार्थ भी तो करना पड़ा। यदि बच्चे ने अपना पुरुषार्थ प्रकट न किया होता, तो माँ की कृपा भी प्रकट नहीं होती। खिलौने और मिठाई में यदि बच्चा भूला रहता, तो माँ भी उसे गोद में नहीं उठाती। सारांश यह कि माँ की कृपा जब प्रकट होती है, तब वह बच्चे को गोद में उठा तो लेती है, पर उस कृपा को प्रकटाने के लिए पुरुषार्थ चाहिए। इसी प्रकार साधक को भी वह पुरुषार्थ प्रकट करना होता है, जिससे भगवान की कृपा प्रकट होती है।

रामचरितमानस में एक टेक है कि भगवान रामचन्द्र के दर्शन हों, इसीलिए यह ग्रन्थ लिखा गया। तुलसी के एकमात्र पूज्य थे भगवान राम और वे चाहते थे कि सभी भगवान राम के दर्शन करने में समर्थ हों। समर्थ हों कैसे? राम मिलें कैसे? रामायण में कुछ चौपाइयाँ आती हैं, जिनको मिला देने से यह पुरुषार्थ का पक्ष प्रगट हो जाता है। एक चौपाई में लिखते हैं –

मिलहिं न रघपति बिनु अनुरागा।
किएँ जोग तप ग्यान बिरागा।। ७/६१/१

मनुष्य चाहे जितना भी योग करे, तप करे, ज्ञान और वैराग्य अपने जीवन में लाए, भगवान राम उनके द्वारा नहीं मिलते। तब कैसे मिलते हैं? अनुराग से मिलते हैं। जब राम के चरणों में अनुराग होता है, तब वे मिलते हैं। लोक साधन के द्वारा नहीं, जीवन में अनुराग आने पर ही भगवान मिलते हैं। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (३९)

स्वामी बोधात्मानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१९६६ ई. में ब्रह्मचर्य और १९६९ ई. में संन्यास के समय भव महाराज हमारे आचार्य थे। ब्रह्मचर्य और संन्यास मन्त्रों को बहुत अच्छी तरह से समझाते थे। तदुपरान्त होम के समय भी वे मन्त्रों की आवृत्ति करवाते थे। उस समय उनका चेहरा-आँख भाव-विभोर रहता था।

१९६५ ई. में समावर्तन समारोह (ब्रह्मचारियों के दो वर्ष के प्रशिक्षण समाप्त होने पर होने वाला समारोह) के समय भव महाराज ने मुझे प्रभु महाराज (स्वामी वीरेश्वरानन्द जी) तथा स्वामी यतीश्वरानन्दजी को निमन्त्रण करने के लिए भेजा। वे दोनों आये थे तथा उन्होंने साधु-जीवन के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर उपदेश दिया था। १९६६ ई. में समावर्तन के समय भव महाराज ने कहा था, ''विद्या चतुष्पाद। विद्या एक चौथाई आचार्य से प्राप्त होती है, एक चौथाई विद्यार्थी से प्राप्त होती है, एक चौथाई सहपाठी से प्राप्त होती है और एक चौथाई समयानुसार प्राप्त होती है। इसलिए मुझसे एक चौथाई से अधिक की आशा मत करो।''

हमारे समय प्रशिक्षण केन्द्र में सन्ध्या समय थोड़ी-सी चाय को छोड़कर और कुछ नहीं मिलता था। सन्ध्या समय बहुत जोरों की भूख लगती थी। केवल पानी पीता था। तदुपरान्त १९६६ ई. के मार्च में उल्टी होने लगी। सभी ने सोचा कि मुझे अलसर हुआ है। एक दिन देखा कि भव महाराज मेरे लिए कई थिन अरारोट बिस्कुट लेकर मुझे देखने आये, जिससे मुझे कुछ खाने को प्राप्त हो। मैं वह दिन कभी भी नहीं भुलूँगा। परवर्ती काल में, मैंने एक दिन हॉलिवूड में मेरे प्रशिक्षण केन्द्र के अनुभव के विषय में व्याख्यान दिया। खाद्य-अभाव की बातें सुनकर एक अमेरिकन महिला ने १२,००० डॉलर दिया। मैं वह प्रभु महाराज को प्रशिक्षण केन्द्र के ब्रह्मचारियों के लिए सन्ध्या समय टिफिन हेतु भेजा। उन्होंने मुझे पत्र लिखा : ''तुम उसके लिए कुछ चिन्ता मत करो। अभी ब्रह्मचारियों के लिए सन्ध्या समय मुरी, बिस्कुट इत्यादि देने की व्यवस्था की गई है।''

१९६८ ई. में दुर्गापूजा-छुट्टी के समय भव महाराज १०-१५ दिन के लिए पुरुलिया में विश्राम हेतु गये थे। मैं भी ७ दिन के लिए अद्वैत आश्रम से वहाँ पर घूमने हेतु गया था। महाराज के साथ-साथ घूमता था और प्रतिदिन रात्रि प्रसाद के उपरान्त विविध-प्रसंग पर चर्चा होती थी। एक दिन उन्होंने गिरीश घोष के सम्बन्ध में बताया, जो उन्होंने पुरी में कुमुदबन्धू सेन से सुना था। गिरीश बाबू शराब पीकर मित्रों के साथ दोपहर में दक्षिणेश्वर जाते हैं और ठाकुर ने द्वार खोलकर उन लोगों के साथ 'हरिबोल, हरिबोल' कहकर नृत्य किया था और एक दिन, शराब पीकर गिरीश बाबू रात्रि में वेश्या के घर में रहने के लिए गये, किन्तु अत्यधिक कष्ट पाकर घर वापस आ गये। उसके दूसरे दिन दक्षिणेश्वर जाकर ठाकुर को सब बताया। ठाकुर ने कहा, ''वह और नहीं होगा, वह और नहीं होगा।'' यह अधिकार-पत्र (आम-मुख्तारनामा) का माहात्म्य है।

विजया दशमी के सन्ध्या समय स्वामी चन्द्रानन्द जी और हमने भव महाराज से दुर्गापूजा के सम्बन्ध में कुछ बोलने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने प्राय: एक घण्टा तक दुर्गा-माहात्म्य के ऊपर बोला। मैंने दैनन्दिनी में कुछ लिखकर रखा था। यहाँ पर मैं भव महाराज का लिखा 'श्रीश्रीदुर्गापूजा' लेख (उद्बोधन : ५४ वर्ष, ९वाँ अंक) से उद्धृत कर रहा हूँ :

अभी हम मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे। कोई-कोई पण्डित कहते हैं, दक्ष कन्या सती बाद में शिवगृहिणी दुर्गा हुई थीं – वह रूपकमात्र है। राजा दक्ष अत्यन्त यज्ञप्रिय थे। यज्ञवेदी उनकी तनयास्वरूपा थी। परवर्तीकाल में वेदी के भीतर की अग्नि सती के पति शिव के रूप में और वेदी के दसों ओर दुर्गा के दस हाथ के रूप में कल्पित हुआ है। प्राय: यज्ञ आदि करने के लिए एक ओर जहाँ अर्थ इत्यादि की आवश्यकता होती है, वही दूसरी ओर यज्ञ के सम्बन्ध में ज्ञान शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता होती है। फिर यज्ञ

को अच्छी तरह से करने का ज्ञान तथा सभी विघ्नों को नाश करके सिद्धिलाभ करने की इच्छा होनी चाहिए। ये सभी भाव ही लक्ष्मी, सरस्वती, कार्तिक तथा गणेश का रूप धारण किये हुए हैं। हिंसा का प्रतीक सिंह तथा पाप का प्रतीक असुर, इनको जय करके ही यज्ञ में प्रवृत्त होना होता है। इसीलिए उनके ऊपर देवी का स्थान है। भक्तों की दृष्टि किन्तु अन्य प्रकार की होती है। उसकी दृष्टि में देवी का यह रूप जड़वस्तु नहीं, कल्पना की वस्तु भी नहीं है। जगत की मूलभूत शक्ति जिसको साधारण दृष्टि से जड़ कहकर विवेचित किया गया है, चैतन्य के सहयोग से वह नित्य चैतन्यमयी है। उस स्वरूप-चैतन्य को त्याग करके वह शक्ति कभी भी अवस्थान नहीं करती। वही ब्रह्ममयी माँ स्वरूप में निर्गुण होने पर भी भक्तों के निकट सगुण-साकार होती हैं। निर्विकार होने पर भी भक्तवत्सला हैं। भक्तों की हार्दिक पूजा वे ग्रहण करती हैं। जिस भक्त के हृदय में जगत्-जननी का आविर्भाव होता है, उसको ऐश्वर्य, ज्ञान, शक्ति, सिद्धि किसी भी वस्तु का अभाव नहीं रहता है। वे सब माँ की नित्यसंगी हैं। माँ के आविर्भाव से भक्त के समस्त रिपु वशीभूत हो जाते हैं। मृण्मयी प्रतिमा का अवलम्बन करके भक्त चिन्मयी माँ की पूजा करके धन्य होता है।

स्नान, पूजा, बलिदान तथा होम, ये चार ही पूजा के प्रधान अंग होते हैं। किन्तु उसके पूर्व देवी का बोधन आवश्यक होता है। शिवप्रिया शिवानी का शिवप्रिय बिल्ववृक्ष के नीचे अवस्थान होता है। इसीलिए भक्त-पूजक वहाँ जाकर अपनी जननी को व्याकुल होकर आह्वान करता है। साधक की दृष्टि में मेरुदण्ड के मध्य में स्थित सुषुम्णा ही बिल्ववृक्ष है। उसके नीचे स्थान में अनन्तशक्तिरूपिणी माँ प्रसुप्त हैं। एकाग्र ध्यान से ही उनका उद्बोधन होता है।

अनेक नद-नदी, झरना और सागर का जल तथा अनेक स्थानों से विविध प्रकार के द्रव्य के सहयोग से देवी के स्नान की व्यवस्था होती है। देवी नित्यशुद्धा हैं, सभी स्थान, सभी जल उनके सामने शुद्ध होता है। भक्त-पूजक इन सब द्रव्यों से देवी को स्नान कराकर तृप्ति का बोध करता है, स्वयं के अशुद्ध भाव को दूर करता है।

अन्यान्य दिनों में पूजा होने पर भी आश्विन शुक्ला सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी तिथि के दिन ही देवी की विशेष पूजा होती है। मृण्मयी मूर्ति को नदी-तीर या जलाशय के सन्निकट ले जाकर यथाविधि स्नान करना सम्भव नहीं होता है; इसीलिए नवपत्रिकारूपिणी देवी को वहाँ ले जाकर स्नान कराया जाता है तथा पूजास्थल में ही दर्पण में देवी को महास्नान कराया जाता है। भक्त को जितना प्रिय वस्तु, भोज्य, वस्त्र, अलंकार है वह सब माँ के चरणों में निवेदित करता है। महाष्टमी के दिन में अनेक शक्ति-समन्विता देवी की विविध उपचार से पूजा की जाती है। अष्टमी और नवमी के सन्धिक्षण में घोर प्रलयकारी चामुण्डारूपिणी देवी की पूजा का विधान है। क्योंकि माँ केवल सृष्टिस्थितिकारिणी तो नहीं हैं, वे तो प्रलयकारिणी भी हैं, सौम्य सौम्यतरा, फिर घोररावा महारौद्री भी हैं। इस प्रकार सभी द्रव्य देकर पूजा करने पर भी उन अनन्त शक्तिमयी माँ की पूजा पूर्ण नहीं हुई। देवी रुधिरप्रिया हैं, वे चाहती हैं बलिदान, उनको पाने के लिए (भक्त) समस्त शक्ति का प्रयोग करता है, सम्पूर्ण तन-मन का अन्त में समर्पण करता है, यहाँ तक कि स्वयं की भी आहुति देता है। तभी बलिदान, होम पूर्ण होता है, देवी प्रसन्न होती हैं। उसके बाद ही विजया–विजयोल्लास होता है। पितृपक्ष में पितृतर्पण करके शुद्धचित्त साधक के मन में जो महालया (महतां बुद्धादिनां लयो यस्याम्) अनुसन्धान आरम्भ हुआ था, पितृलोकादि जिनके आंशिक प्रकाश हैं, आज अन्त में अपना सब कुछ बलिदान देकर उस सर्वाधाररूपिणी महालया को अन्तर में पूर्णरूप में पाकर विजयोल्लास मनाता है। पशु प्रभृति का वह बलिदान एवं सिद्धि उस परम सिद्धि का अनुकल्प है।

कारण-सलिल से माँ की मूर्ति का ग्रहण होता है। इसीलिए आज पूजा के अन्त में भक्तगण उस मूर्ति को जल में विसर्जन करते हैं। उस जल में माँ का स्थूल शरीर मिल गया, वैसा सोचकर परम पवित्र ज्ञान से उस जल को सभी के शरीर पर छिड़काव करते हैं। सभी को माँ की सन्तान जानकर प्रेम-आलिंगन करते हैं।

१९७१ ई. में मैं हॉलिवूड गया। यदि मुझे शास्त्र या संस्कृत व्याकरण सम्बन्धित कोई प्रश्न रहता, तो मैं भव महाराज से पूछता था। वे तत्क्षण उत्तर देते थे। हॉलिवूड में संन्यासिनियों के ब्रह्मचर्य-संन्यास के समय स्वामी प्रभवानन्द जी की पुस्तक में कई पाठान्तर देखा। तत्पश्चात् मैंने भव महाराज को बेलूड़ मठ के ब्रह्मचर्य-संन्यास मन्त्रों की कॉपी करके हमें भेजने के लिए लिखा। उन्होंने वह भेजा था। मैंने उसको जेरॉक्स करके अमेरिका के सभी संन्यासियों के दे दिया।

बेलूड़ मठ से ११/०४/१९७२ ई. को भव महाराज ने मुझे पत्र लिखा था : '' 'मैं नहीं – माँ' यह बात तुमने अपने पूर्व के एक पत्र में लिखा था। क्या आनन्द का विषय है ! इस छोटे 'मैं' को जितना कम किया जायेगा, उतना ही उनका 'मैं' अर्थात् माँ कार्य करेंगी। वे ही करते हैं – ***भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारुढ़ाणि मायया*** (गीता १८/६१), दूसरा ***अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*** (गीता ३/२७)। उस कच्चा मैं को मारकर फेंकने से, पक्का मैं, दास मैं, यन्त्र मैं; इस भाव को ले आने से क्या ही आनन्द है ! यह दास मैं ही पक्का मैं है; दुर्बल असहाय नहीं है। ईश्वर की शक्ति से वह शक्तिशाली है। उनका कार्य करने के लिए विशेष शक्तिसम्पन्न पुँथिकार (अक्षय कुमार सेन) ने इसको अच्छी तरह दिखाया है –

'पक्का मैं, दास मैं, प्रभु हैं मेरे।
कच्चा मैं, मैं, मद और अहंकार।।
बहुत सुन्दर दास मैं का है चेहरा।
रहता है मैं, किन्तु वह है जीवन्त मरा।।
मरकर भी उसके तन में है बहुत बल।
रोम रोम में बाँधता है वह अचल अटल।
पिता का नदी का पानी अंजली भर-भर कर।
या क्षणों में पार हुआ नदी उछलकर।। ' ''

भव महाराज के पत्रों से बहुत प्रेरणा मिलती थी। उन्होंने मुझे आशीर्वाद देते हुए लिखा था : ''ओह, तुम्हारे जैसा गेरुआ-पहने हुआ संन्यासिवृन्द जो लोग वेदान्त का डिण्डिम बजाते हैं, वे लोग क्या ही भाग्यवान् हैं ! उनका वेदान्त पढ़ना सार्थक हुआ। ठाकुर उन लोगों को अपनों से और अधिक अपना करें, ऐसी प्रार्थना है।''

विगत् १९५० ई. से रामकृष्ण संघ के बहुत संन्यासियों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे हुआ है। उनलोगों के पास से जीवन-निर्माण के सम्बन्ध में कई सम्पद् पाया हूँ, जो किसी ग्रन्थ या शास्त्र में नहीं पाया। भव महाराज वास्तव में 'घी में तला हुआ शक्कर के सीरा में डुबाया हुआ' संन्यासी थे। एक दिन वेदान्त कक्षा में एक ब्रह्मचारी की अनुभूति के विषय में चुनौती करने पर, भव महाराज ने दृढ़ स्वर में कहा था, ''पिछले चालीस वर्षों में क्या केवल घास काटा हूँ?'' **(क्रमशः)**

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान – रायपुर
२. प्रकाशन की नियतकालिकता – मासिक
३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक – स्वामी सत्यरूपानन्द
५. सम्पादक – स्वामी प्रपत्त्यानन्द
राष्ट्रीयता – भारतीय
पता – रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

स्वत्वाधिकारी – रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण – स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी ज्ञानव्रतानन्द, स्वामी सत्येशानन्द और स्वामी अच्युतेशानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी सत्यरूपानन्द

पृष्ठ १२० का शेष भाग

महाराज श्रीदशरथ से ले लिया कि मेरी पुत्री के गर्भ से जन्म लेनेवाला पुत्र ही अयोध्या के राज्य का उत्तराधिकारी होगा। महाराज दशरथ उतावले थे विवाह करने के लिये। कैकेयी के सौन्दर्य के प्रति उनके मन में आसक्ति थी। इसलिए उन्होंने अपने आप को भुलावा दिया कि अन्य किसी रानी के गर्भ से तो पुत्र उत्पन्न हुआ ही नहीं है। यदि अब कोई पुत्र होगा भी तो वह कैकेयी के गर्भ से ही होगा। इसलिए वचन दे देने में कोई आपत्ति नहीं है। इसलिये उन्होंने वचन दे दिया। इसका परिणाम क्या हुआ? महाराज दशरथ ने यह व्यापार की वृत्ति अपनाई, उनका विवाह समर्पण न रहकर लाभ की वृत्ति हो गयी। **(क्रमशः)**

युवा दिवस मनाया गया

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायुपर में राष्ट्रीय युवा महोत्सव कोविड-१९ की नियमों का पालन करते हुये आयोजित हुआ। जिसमें लगभग १०० बच्चों ने भाग लिया। आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज, श्रीरामकृष्ण स्कूल के संचालक श्री

विवेक तिवारी और श्री हितेन्द्र सिंह जी ने बच्चों को सम्बोधित किया।

रामकृष्ण मिशन, आलो विद्यालय की पाँच विद्यार्थियों की टीम ने, १२ नवम्बर, २०२१ को ईटानगर में आयोजित राज्यस्तरीय नेशनल चिल्ड्रेन साइंस कॉंग्रेस (NCSC) राष्ट्रीय बाल विज्ञान कॉंग्रेस में साँतवा स्थान अर्जित किया। २७ से ३१ दिसम्बर तक राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित NCSC की सभा में उनके प्रोजेक्ट 'एक्वा टेरेस – इन्टीग्रेटेड प्रोजेक्ट फॉर हिल्ली एरिया' का चयन हुआ।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर विद्यालय की एक छात्रा ने इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलोजी (IIT) द्वारा आयोजित इस वर्ष की प्रवेश परीक्षा में ३३८वाँ स्थान अर्जित किया। इस परीक्षा में ऐसा उत्कृष्ट प्रदर्शन करनेवाली, वह नारायणपुर विद्यालय की प्रथम छात्रा है।

नैतिक शिक्षा एवं युवाओं के लिए कार्यक्रम

तृश्शूर मठ द्वारा उच्च माध्यमिक एवं महाविद्यालय के विद्यार्थियों हेतु सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें सम्पूर्ण केरल राज्य से ५०० से अधिक विद्यार्थियों ने भाग लिया। विजेताओं को ११ सितम्बर को पुरस्कृत किया गया।

चिकित्सा शिविर

निम्नलिखित केन्द्रों द्वारा गरीब रोगियों को चिकित्सकीय सेवा प्रदान की गयी –

पोरबन्दर द्वारा १२ नवम्बर, २०२१ को आयोजित नेत्र-चिकित्सा शिविर में ३७ रोगियों का उपचार किया गया एवं १४ रोगियों की केटारेक्ट शल्य-चिकित्सा की गयी।

रामकृष्ण मठ, नागपुर ने ३१ अक्तूबर को नागपुर जिले के महलगाँव ग्राम में आयोजित नेत्र-चिकित्सा शिविर में २०४ रोगियों की चिकित्सा एवं २८४ शल्य चिकित्सा की और १०९ चश्में का वितरण किया ।

भुवनेश्वर ने २८ नवम्बर, २०२१ को दिव्यांगों हेतु आयोजित शिविर में १०६ दिव्यांगों को कृत्रिम अंग वितरित किये।

रामकृष्ण विवेकानन्द सोसायटी, धनबाद में ८ और ९ दिसम्बर, २०२१ को पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता का आयोजन हुआ, जिसमें धनबाद के डी.ए.वी, डी.पी.एस., बालिका उच्च विद्यालय, चेतना महाविद्यालय, धनबाद पब्लिक स्कूल के चयनित १२५ बच्चों द्वारा स्वदेश मन्त्र का पाठ किया गया। जिसमें पुरस्कार हेतु ६ बच्चों का चयन किया गया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में २६ दिसम्बर को 'श्रीमाँ सारदा : जीवन और सन्देश' पर एक वेबीनार आयोजित हुआ, जिसमें स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी सेवाव्रतानन्द, डॉ. सुरुचि सतीश पाण्डे और डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने व्याख्यान दिये।